सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, पण्डित अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिकाप्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, पण्डित केदारनाथ भट्ट, ब्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, पण्डित क्षेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, पण्डित रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, पण्डित रामचन्द्र शर्मा, श्री महेशप्रसाद मौलवी फ़ाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्रनाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश वर्मा, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, पण्डित सुमित्रानन्दन पंत, पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे बाजपेयी, पं० हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पण्डित मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, पण्डित अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० धीरेन्द्र वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, पण्डित केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

रहस्य-रोमांच

हंसराज की डायरी

शोध के चमत्कारपूर्ण कारनामों का
एक मनोरंजक चित्र

गोपालराम गहमरी

यदि आप अभी तक इस सिरीज़ के ग्राहक नहीं बने हैं, तो ग्राहक बनने में शीघ्रता कीजिए; या पुस्तक के पृष्ठभाग पर दी हुई सूची में से अपनी पसंद की पुस्तकें चुनकर अपने स्थानीय पुस्तक-एजेंट से लीजिए।

सरस्वती-सिरीज़ नं० २४

हंसराज की डायरी

गोपालराम गहमरी

Gopal Ram Gahmiri

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

सूचीपत्र

१

लाला हंसराज से मेरी पहले-पहल जान-पहचान सन् १९२४ ई० में हुई थी। उन दिनों विश्वविद्यालय की परीक्षा में पास होकर मैं अभी बाहर निकला ही था। रुपये-पैसे की कुछ कमी तो थी नहीं। पिताजी जो रुपया बङ्क में जमा कर गये थे उसके सूद से हिन्दू होटल में शिष्ट शिक्षित मनुष्य की तरह रहकर भरण-पोषण का काम अच्छी तरह चला जाता था। किसी का कुछ देना-पावना नहीं था। इन सब झंझटों से दूर होकर भलेमानस की तरह अच्छी पोशाक, अच्छा खाना-पहनना सदा निर्विघ्न चला जाय इसका प्रबन्ध मानों वे मेरे वास्ते अपने सञ्चित धन से कर गये थे।

इसी कारण मेरे मन में था कि सदा क्वारा रहकर साहित्य-चर्चा में जीवन व्यतीत करूँगा। पहले युवावस्था में यही जोश भर रहा था कि एकाग्रचित्त होकर वाणीदेवी की आराधना करके हिन्दी-साहित्य में युगान्तर उपस्थित कर दूँगा। उस अवस्था में हमारे देश के नव-युवकों को अनेक बड़े-बड़े स्वप्न आया करते हैं, यद्यपि उन सपनों के टूटने में भी बहुत विलम्ब नहीं होता। किन्तु उन बातों को छोड़कर

पहले मैं यही कहना चाहता हूँ कि लाला हंसराज से कैसे मेरा परिचय हुआ।

जो लोग भारत के सिंहद्वार बम्बई की अच्छी तरह सैर कर चुके हैं उनमें भी बहुतों को नहीं मालूम होगा कि उस मुंबापुरी के केन्द्र-स्थान में, नलबाज़ार और कुम्हारवाड़े की मोड़ पर, एक ऐसी विकट बस्ती है जहाँ एक ओर व्यापार-कुशल मारवाड़ी और भाटियों का रहना होता है और पास ही खपरैल के घरों में मज़दूर और रोज़ काम करके पेट भरनेवाले अन्य श्रेणी के लोग रहते हैं। वहीं दूसरी ओर भूरी आँखों और चञ्चल चोटीवाले चीन-देश-वासियों का निवास है। उस त्रिवेणी की सङ्गमभूमि में एक ऐसे दरजे के आदमी भी रहते हैं जिनको दिन में देखकर कोई नहीं कह सकता कि उनमें कुछ अस्वाभाविक या विशेष असाधारण प्रवृत्ति विराजमान है।

लेकिन सन्ध्या हो जाने के बाद जब सूर्यदेव जगत् को तपाकर अपने अस्ताचल को पधार जाते हैं तब उस महल्ले का आश्चर्यरूप से परिवर्त्तन होने लगता है। थोड़ी ही रात जाने पर वहाँ सब आसपास की दूकानें एकदम बन्द हो जाती हैं। चारों ओर सन्नाटा छा जाता है। सड़क पर दूर-दूर खम्भों पर खड़े लम्प अपनी लाल जिह्वा लपलपाना छोड़ अपने नीचे अन्धकार ही की वृद्धि किया करते हैं। उस समय वे लोग छोटी छोटी सड़कों पर आवाजाही शुरू कर देते हैं। केवल दूर पर एक-आध पान-बीड़ी की दूकानें खुली रहती हैं।

उस अवसर पर वे लोग केवल चुपचाप छाया की तरह चलते फिरते हैं। यदि कोई भूला भटका, राह चलता उधर से आ निलकता

है तो वह भी चुपचाप डर से जल्दी-जल्दी पाँव उठाता हुआ, शङ्कित भाव से, वहाँ का भयङ्कर रास्ता पार कर जाता है।

उस विकट महल्ले में किस तरह पहुँचकर मैं एक मेस का निवासी हो गया था, वह सब विस्तार से कहने लगूँ तो बड़ा पोथा हो जायगा। संक्षेप में इतना ही कह देना बहुत होगा कि दिन में उस महल्ले को देखकर मेरे मन में कुछ भी सन्देह या दुर्भावना नहीं हुई। मेस के दूसरे महल पर एक हवादार कमरा सस्ते भाड़े पर पाकर मैं एकदम सामान लिये हुए वहाँ पहुँच गया।

लेकिन जब पीछे मालूम हुआ कि उस महल्ले में माहवारी दो-तीन लाशें कटी और अंगभंग दशा में सड़क पर मिला करती हैं और कम से कम सप्ताह में एक बार लाल पगड़ीवाली पुलिस की दौड़ भी वहाँ ज़रूर आया करती है तब मन कुछ विचलित हुआ, लेकिन मेसवालों के व्यवहार से ऐसी ममता हो गई थी कि वहाँ से डेरा-डंडा उठाकर दूसरी जगह जाने का विचार नहीं कर सका।

बात यों थी कि सन्ध्या समय तो मैं अपने लिखने-पढ़ने के काम में ही लगा रहता था। सूरज डूबने के पीछे घर से बाहर निकलने का अवसर नहीं होने के कारण व्यक्तिगत रूप से आफ़त का शिकार होने की कभी आशङ्का ही नहीं हुई।

हमारे मेस के ऊपरी महल पर केवल पाँच कमरे थे। हरएक में एक-एक सज्जन रहते थे। उनमें से सब नौकरी करके जीवन बितानेवाले, अधिक उम्र के लोग थे। वे लोग हर शनिवार को घर जाते और सोमवार को लौटकर आफ़िस के काम में जुत जाते थे। वे

लोग बहुत दिनों से उस मेस में रहा करते थे। इन दिनों उनमें एक आदमी काम से छुट्टी पाकर घर चले गये थे। उन्हीं के कमरे पर मैंने अधिकार कर लिया था।

सन्ध्या हो जाने पर बरण्डे में ताश पीटने और चौसर खेलने की बैठक होती थी। उस समय हार-जीत और गोटी लाल के लिए वहाँ कभी गरमागरमी और चिल्लाहट भी मच जाती थी। उनमें गोविन्द पाँडे एक पक्के खिलाड़ी थे। उनके प्रतिद्वन्द्वी थे कल्लूमल।

कल्लूमल हार जाने पर बड़ी धींगाधींगी करते थे। उनसे लोगों को निबटने में नव बज जाता था। तब रसोइया महराज आकर रोटी के तैयार होने की खबर देते थे। उसके बाद वहाँ का अड्डा तोड़कर सब लोग खाने बैठते जिसकी समाप्ति करके सब लोग अपने-अपने कमरे में सो रहते थे। यही उस मेस की चर्य्या थी। सब लोग निश्चिन्त होकर उसमें जीवन बिताते हैं, देखकर मैं भी उनमें मिल गया। मेस के नीचेवाले कमरे में मकानवाले महाशय निवास करते थे। वे मकान मालिक थे होमियोपैथी डाक्टर, नाम था शुकदेवप्रसाद।

शुकदेवप्रसाद बड़े सरल स्वभाव के मिलनसार आदमी थे। उनके घर में लड़के-बच्चे नहीं थे। जान पड़ता है, उन्होंने ब्याह नहीं किया था। वे मेस में रहनेवालों के खाने-पीने और सुख-स्वच्छन्दता के लिए सदा उद्योग करते रहते थे। उनके सुप्रबन्ध के कारण किसी को कुछ अभाव-अभियोग का अवसर नहीं आता था। मासिक भोजन और कमरे के किराये के लिए प्रतिमास तीस

रुपया हर पहली तारीख़ को आगामी देकर ही लोग महीने भर के लिए निश्चिन्त हो जाते थे।

उस महल्ले के ग़रीबों में डाक्टर शुकदेवप्रसाद की बड़ी चलती थी। सबेरे और सन्ध्या को उनके बैठक में रोगियों की बड़ी भीड़ होती थी। कोई रोग हो, किसी तरह का साधारण या असाधारण, नया या पुराना सबको चार ख़ुराक का एक आना लेकर दवा देते थे। इस कारण उनका नाम एकनिया बाबू सबमें प्रसिद्ध हो गया था। रोगियों के घर उनको देखने जाने के लिए तो उन्होंने एकदम इनकार करके नई डाक्टरी पद्धति का प्रचलन किया था। जब कभी दबाव या विशेष अनुरोध पर किसी रोगी के यहाँ चले जाते तो उससे फ़ीस नहीं लेते थे। इस कारण मुहल्ले के अड़ोस-पड़ोस में उनकी बड़ी बड़ाई, बड़ी मर्यादा और बड़ी श्रद्धा लोगों में हुआ करती थी। मैं भी थोड़े ही दिनों में उनका एक आलापी मित्र हो गया।

दस बजे सब लोग खा-पीकर आफ़िस चले जाते थे। डेरे पर हमीं दो आदमी पड़े रहते थे। स्नान-भोजन बहुधा साथ ही हुआ करता था। उसके बाद दुपहरी भी ग़प लड़ाने, अख़बार पढ़ने और इधर-उधर की आलोचना में कट जाती थी। डाक्टर बड़े सात्त्विक, उपकारी और निरीह होने पर भी बड़ी बढ़िया-बढ़िया बातें कहा करते थे। दुनिया देखे हुए अनुभवी आदमी थे।

वे अभी चालीस वर्ष से अधिक के नहीं थे। किसी विश्वविद्यालय की कोई डिग्री भी उन्होंने हासिल नहीं की थी, लेकिन घर बैठे ही

उन्होंने इतनी अभिज्ञता अर्जन कर ली थी कि उनकी बातें सुनने पर लोग दंग हो जाते थे।

लोगों का आश्चर्य और अपनी बड़ाई देख-सुनकर डाक्टर कहा करते थे—"और तो मेरा कुछ काम नहीं है, लेकिन घर बैठकर ही दुनिया की सैर करना यह मज़ा किताब में देखा, यही मेरा धन्धा है। इसी से जो कुछ मालूम होता है वह मैं करता हूँ। हमारी जो कुछ पूँजी है वह सब इन्हीं पुस्तकों की है।"

उस महल्ले में दो महीना बिता चुकने पर एक दिन मैं कोई दस बजे के समय डाक्टर साहब के घर बैठा 'बम्बई-समाचार' पढ़ रहा था। गोविन्द पाँड़े भोजन के बाद पान कचरते हुए आफ़िस चले गये। उनके बाद कल्लू बाबू बाहर निकले। वे भी दाँत के दर्द के लिए डाक्टर से एक पुड़िया दवा लेकर अपने दफ़्तर को चलते हुए। फिर बाक़ी दोनों ने बाहर होकर अपना-अपना रास्ता नापा। अब दिन भर के लिए मानो मेस ख़ाली हो गया।

डाक्टर के पास अभी दो-एक रोगी थे। वे भी दवा लेकर बारी-बारी से बाहर निकले। उनके चले जाने पर डाक्टर ने चश्मा उतारकर धोती के छोर से साफ़ करते हुए पूछा—"अख़बार में कुछ नई ख़बर है? हम लोगों के महल्ले की?"

मैं—नई ख़बर तो यही है कि इस महल्ले में पुलिस ने ख़ाना-तलाशी ली है।

डाक्टर ने हँसकर कहा—"यह तो हमेशा का धन्धा है। कहाँ किसके घर में हुई है?"

मैं—यहीं पासवाले छत्तीस नम्बर के मकान में कल तीसरे पहर को। छम्मी मियाँ के घर की तलाशी हुई है।

डा०—अरे उसको तो हम जानते हैं! हमारे पास दवा लेने वह बहुत आया करता है। लिखा है तलाशी किस वास्ते हुई है?

मैं—कोकेन के वास्ते हुई है। देखिए न पढ़ लीजिए।

डाक्टर ने फिर चश्मा नाक पर चढ़ाकर हाथ बढ़ाया। मैंने तुरत 'बम्बई-समाचार' दे दिया। वे आँख के पास ले जाकर पढ़ने लगे—

"कल कुम्हारबाड़ा के छत्तीस नम्बर A मकान में शेख़ छम्मी मियाँ के मकान में पुलीस ने घंटों तलाशी की है। उस घर में छम्मी नाम का एक शेख़ रहता था। लेकिन कोई फँसानेवाली चीज़ बरामद नहीं हुई है। तो भी पुलिस को यह विश्वास है कि इस महल्ले में कोकेन की कोई गुप्त आढ़त है, जहाँ से शहर में सर्वत्र कोकेन सप्लाई किया जाता है। कोई पक्के हाथ का चतुर असामी पुलीस की आँख में धूल झोंककर बहुत दिनों से यह ग़ैरक़ानूनी काम कर रहा है। यह बड़े दुःख की बात है कि आज तक अपराधी—अपराधियों या उनके नेता—का पुलीस पता नहीं लगा सकी, न उनके गुप्त भाण्डार का ही कुछ ठिकाना मालूम हो सका।"

डाक्टर कुछ चिन्ता करके कहने लगे—"बात बिलकुल सही है। हम भी इतना ज़रूर समझ रहे हैं कि अगल-बग़ल में कोकेन का कोई बड़ा अड्डा ज़रूर है, इसका मुझे कई बार इशारा मिला है। आप तो जानते ही हैं, हर तरह के लोग हमारे यहाँ दवा लेने आया

करते हैं। और चाहे जो हो लेकिन कोकेन खानेवाला आदमी डाक्टर की आँखों से बच तो सकता नहीं।"

मैंने पूछा—"अच्छा डाक्टर साहब! इस महल्ले में इतनी ख़ून-ख़राबी और मार-काट होने का कारण क्या है?"

डाक्टर कहने लगे—"इसका कारण आपकी समझ में नहीं आता! यह तो सीधी सी बात है जो छिपकर ग़ैरक़ानूनी काम करके कोई रोज़गार चला रहा है वह सदा डरता रहता है। उसके मन में हमेशा पकड़े जाने का भय लगा रहता है। अगर संयोग से कोई आदमी उसका गुप्त भेद जान ले तो ज़रूर वह ग़ैरक़ानूनी काम-वाला उसको जान से मार डालेगा। आप ही विचार कीजिए। मान लीजिए कि मैं ही अगर कोकेन बेचने का रोज़गार करता हूँ और आप उसका पता पा गये तो आपका बचा रहना मेरे लिए तो बड़ा ख़तरनाक है न? अगर आप पुलिस से यह बात खोल दें तो मेरे वास्ते तो जेल तैयार है! और साथ ही मेरे रोज़गार का ख़ातमा हो जायगा। लाखों का माल ज़ब्त होते देर नहीं लगेगी! तब मैं ऐसा कैसे होने दूँगा।"

यही कहकर डाक्टर हँसने लगे। मैंने कहा—"देखते हैं, आपको तो अपराधियों के भीतर का अच्छा अनुभव है।"

"हाँ, मैं इन लोगों की हरकत अच्छी तरह से पहचानता हूँ न?" कहकर डाक्टर ने अपने काग़ज़ और रजिस्टर समेटना शुरू किया। मैं भी उठकर वहाँ से चलने को हुआ, इसी समय एक आदमी वहाँ पहुँचा। वह तेईस-चौबीस बरस का रहा होगा। देखने में पढ़ा-लिखा

भला आदमी जान पड़ा। शरीर सुडौल, गोरा बदन, चेहरा भी ख़ूब साफ़, मुखमण्डल और चितवन से उसकी बुद्धिमानी प्रकट हो रही थी। ऐसा जान पड़ा कि इस समय सङ्कट में पड़ गया है। कपड़े-लत्ते की ओर उसकी सावधानी नहीं है। बाल बिखरे हुए। पञ्जाबी कुरता मैला हो गया है। पाँव के जोड़े का रङ्ग भी पालिश बिना ख़राब हो रहा है। चेहरे पर उद्वेग है। मेरी ओर ताककर डाक्टर से कहने लगा—"सुना यह कोई मेस है। मैं रहना चाहता हूँ। कोई कोठरी ख़ाली है?"

हम दोनों आदमी विस्मय की दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे। डाक्टर ने मूँड़ हिलाकर कहा—"नहीं, कोई ख़ाली जगह तो इसमें नहीं है। आप क्या काम करते हैं?"

वह आदमी मानो थका हुआ रोगी के बेञ्च पर बैठ गया। बोला—"काम तो मैं अभी खोजता फिरता हूँ। दरख़्वास्त देकर हुक्म की राह देखता हूँ। लेकिन तब तक कहीं रहने का ठिकाना हो जाय तो इस ग़रीबी में कुछ सहारा मिले। लेकिन इस अभागे शहर में इतने होटल, मेस होते हुए भी मेरे नसीब से कोई ख़ाली जगह नहीं मिलती।"

कुछ सहानुभूति दिखलाकर डाक्टर ने कहा—"इन दिनों यहाँ ख़ाली जगह कहाँ मिलती है! आजकल बाहर से बहुत आदमी आकर शहर में बस जाते हैं। आपका शुभ नाम क्या है महाशय?"

"नाम तो मेरा तोताराम है। यहाँ आकर पेट भरने के लिए नोकरी की तलाश में बहुत घूम रहा हूँ। घर से बरतन-बरतन

बेचकर किसी तरह कुछ रुपया जुटाकर आया था, वह भी ख़तम हो रहा है। अब हलवाई की दूकान पर दोनों जून खाने से कै दिन चल सकता है? इसी से चाहता हूँ कि भले आदमी का कोई मेस या वीसी* मिल जाता तो गुज़र कर लेते। बहुत दिन नहीं महीने खाँड़ में तो हस्त-नेस्त हो जायगा। थोड़े दिन के वास्ते साग-सत्तू खाकर पड़ रहने का आश्रय मिल जाता तो मैं दिन काट ले जाता।"

डा०—बड़े अफ़सोस की बात है तोतारामजी, हमारे इस मेस में कोई भी कोठरी ख़ाली नहीं है।

लम्बी साँस लेकर तोता कहने लगा—"ख़ाली नहीं है तब तो कोई भी उपाय नहीं है साहब! जाता हूँ, देखूँ भिण्डीबाज़ार में कोई जगह मिल जाय तो—मैं डरता हूँ कि वह महल्ला ठीक नहीं है। कहीं सोते में जो कुछ टेंट में बचा है कोई उड़ा ले तो मुफ़लिसी में आटा गीला हो जायगा। एक गिलास पानी मुझे पिला देंगे?"

डाक्टर उठकर पानी लाने गये। तोताराम की हालत देखकर मुझे बड़ी दया आई। कुछ देर पर मैंने कहा—हमारा घर बड़ा है। मैं अकेला उसमें रहता हूँ। अगर आप उसमें गुज़ारा कर सकें तो मैं आपको उसमें जगह दे सकता हूँ।

---

* वीसी बम्बई में गुजरातियों के होटल को कहते हैं। मारवाड़ी लोग अपने होटल को ढाबा और गुजराती वीसी कहा करते हैं।

तोताराम ख़ुश होकर कृतज्ञता की दृष्टि से देखते हुए कहने लगे—"नेकी और पूछ-पूछ ! मैं अच्छी तरह गुज़ारा कर सकता हूँ। आप ऐसे सज्जन के साथ रहने में मुझे तो बड़ी ख़ुशी होगी।"

यही कहकर तोताराम ने टेंट से कई नोट और कुछ नक़द रुपया निकालकर पूछा—"कहिए मुझे क्या देना होगा। मैं पेशगी दे दूँ नहीं तो मेरे पास रहने से ख़र्च हो जाने—"

उनका इतना आग्रह देखकर मुझे हँसी आई। कहा—"नहीं, जल्दी क्या है। दे दीजिएगा।"

इतने में डाक्टर पानी लेकर आ गये। उनसे मैंने कहा—'ये इस समय बड़े सङ्कट में हैं। मैं कहता हूँ कि मेरी ही कोठरी में रह जायँ तो मुझे कुछ तकलीफ़ नहीं है। डाक्टर साहब ! आपकी क्या राय है ?"

तोताराम ने गद्गद होकर कहा—"इन्होंने मेरे ऊपर बड़ी दया की है डाक्टर साहब ! मैं इनको बहुत दिन तो तकलीफ़ नहीं दूँगा। अगर जल्दी कोई और जगह मिल गई तो मैं वहीं चला जाऊँगा।"

यही कहते हुए हाथ में गिलास लेकर तोताराम पानी पीने लगे। डाक्टर ने विस्मित भाव से मेरी ओर देखकर कहा—"आपके कमरे में ? अच्छी बात है। जब आप राज़ी हैं तब हमको कुछ नाहीं नहीं है। आपको भाड़ा में भी आधा-आधा हो जायगा और गुलज़ार भी..."

मैं नहीं इसके वास्ते नहीं। इनकी हालत देखकर मुझे दया आ गई है डाक्टर साहब !

डाक्टर—हाँ, यह बात तो ठीक ही है। अच्छा तो आप अब अपना सामान लेकर आ जाइए। देर काहे की बाबू तोताराम जी!

तो०—जी हाँ। मेरा सामान कुछ वैसा नहीं है। बिछौना और केनविस का एक बैग है। एक होटल के दरवान के पास रखकर आया हूँ। अभी लिये आता हूँ।

मैं—हाँ ले आइए। यहीं नहाना-खाना हो जायगा।

"तब तो और बड़ी दया होगी।" कहकर कृतज्ञता से मेरी ओर देखते हुए तोताराम वहाँ से जल्दी-जल्दी पाँव उठाते चले गये।

उनके चले जाने पर हम दोनों कुछ देर तक चुपचाप रहे, फिर डाक्टर अपने रूमाल से चश्मा पोंछने लगे। मैंने पूछा—"कहिए! क्या सोच रहे हैं?"

डाक्टर चौंककर बोले—"नहीं, सोचता कुछ नहीं। विपत् में पड़े हुए पर दया करना सज्जन का काम है। आपने अच्छा किया बेचारे को जगह दे दी। लेकिन यह बात ज़रूर है कि बे जाने-पहचाने आदमी से सावधान रहना ही उचित है। ख़ैर, यहाँ कोई ऐसा मामला नहीं है, न ऐसी कोई झंझट की बात ही दीखती है।"

२

अब तोताराम मेरे घर में आकर रहने लगे। डाक्टर के घर में एक फ़ालतू चौकी पड़ी थी। उन्होंने उसे ऊपर भिजवा दिया। वह तोताराम के सोने को हो गई। लेकिन देखा तो तोताराम दिन को डेरे में रहते नहीं थे। सबेरे ही उठकर नौकरी की खोज में जाते और दस-ग्यारह बजे के समय लौटते थे। फिर स्नान-भोजन करके चले जाते थे। लेकिन जो थोड़ा सा समय उनका डेरे में बीतता था उतने ही में मेस के सब आदमियों से मिल-जुलकर सबके स्नेहभाजन हो गये थे।

जब सन्ध्या समय मजलिस बैठती तब उनकी ज़रूर पुकार होती थी। लेकिन ताश या चौसर खेलना उनको नहीं आता था। इस कारण धीरे-धीरे नीचे आकर डाक्टर से गप लड़ाने लगते थे। मेरे साथ भी उनकी बहुत मैत्री हो गई थी। हम दोनों एक उम्र के थे। दोनों का एक ही घर में रहना, उठना-बैठना होने के कारण परस्पर आप की जगह तुम का व्यवहार होने लगा था।

तोताराम के डेरे में आने पर एक सप्ताह तो बड़े सुख से बीता। कहीं कुछ आफ़त उपद्रव नहीं, लेकिन आठवें दिन से मेस में तरह-तरह के उपद्रव होने लगे। एक दिन सन्ध्या को तोताराम और मैं डाक्टर के घर में बैठे इधर-उधर की बातें कर रहा था। रोगियों की भीड़ घट गई थी। दो-एक आदमी बीच-बीच में आते और

अपना रोग कहकर दवा ले जाते थे। डाक्टर साहब हम लोगों से बातें भी करते जाते थे और रोगियों को दवा देकर उनसे दाम ले लेकर हैंडबैग में रखते जाते थे। कल रात को क़रीब हम लोगों के सामने ही एक ख़ून हो गया था। आज सबेरे ही सड़क पर लाश मिलने से महल्ले भर में कुछ सनसनी फैली हुई थी। हम लोग उसी विषय की बातें कर रहे थे। बात यह थी कि जो लाश मिली थी वह देखने से एक ग़रीब भाटिया की मालूम हुई लेकिन उसकी कमर से सौ सौ रुपये के दस नोट पाये गये। डाक्टर कहने लगे—"यह सब कोकेन के उपद्रव के सिवा और कुछ नहीं है। अगर रुपये के लोभ से यह ख़ून हुआ होता तो उसकी कमर में से एक हज़ार जो मिला है वह हरगिज़ नहीं रहने पाता। मैं तो समझता हूँ कि वह कोकेन का ख़रीदार था। जब ख़रीदने आया तब बेचनेवाले की कोई ऐसी ही घात की बात मालूम हो गई। उसने उन रोज़गारियों को पुलीस का डर दिखाकर धमकाया होगा। बस उसको बदमाशों ने ख़तम कर डाला है।"

तोताराम ने कहा—"कौन जाने साहब, कहाँ का पानी कहाँ गया है। मैं तो यही देखकर डरता हूँ कि आप लोग इस महल्ले में कैसे कुशल से निबाह रहे हैं। मुझे पहले यह सब मालूम हुआ होता तो—"

हँसकर डाक्टर ने कहा—"तब तो आप भिण्डीबाज़ार ही में जाकर टिकते। लेकिन तोतारामजी! हम लोगों को तो इसका कुछ भी डर नहीं लगता। हम लोग दस-बारह बरस से यहीं हैं। किसी

के तीन-पाँच में नहीं रहते। इस कारण हम लोगों को कुछ भी बखेड़े में पड़ने का भय नहीं रहता।"

तोताराम ने कहा—"नहीं डाक्टर बाबू! आपको असल बात का पता नहीं है।" इसी समय कुछ शब्द हुआ। मैंने देखा तो उसी मेस के गोविन्द पाँड़े दरवाज़े पर कान लगाकर हम लोगों की बातें सुन रहे हैं। उनके चेहरे का रङ्ग बदला हुआ देखकर मैंने पूछा—"क्यों पाँड़ेजी, आप इस समय नीचे कैसे आये?"

अकचकाकर पांड़े—"नहीं, यहीं मैं एक पैसे की बीड़ी लाने गया था।" कहते हुए धम-धम करके ज़ीने से ऊपर चले गये।

हम लोगों में मुँहतकौअल होने लगी। उन प्रौढ़ गम्भीर पाँड़ेजी को हम सब लोग बड़ी श्रद्धा से देखते थे। लेकिन आज चुपचाप दरवाज़े के पास छिपकर हम लोगों की बात क्यों सुन रहे थे? समझ में नहीं आया!

रात को जब हम लोग भोजन करने बैठे, तब पता चला कि पाँड़े जी पहले ही खा-पीकर निबट चुके हैं। भोजन करके जब सिगरेट समाप्त करके अपने शयनागार में गया तो देखता क्या हूँ कि तोताराम फर्श पर एक तकिया रखे पड़ा है। मन में बड़ा विस्मय हुआ! क्योंकि अभी गरमी बहुत नहीं पड़ती कि इस तरह लेटा जाय। घर में अँधेरा था। तोताराम ने कुछ साँस-डकार नहीं ली। इसी से समझ में आया कि थककर पड़ गये हैं। मुझे अभी नींद नहीं आती थी। लेकिन यह समझकर कि रोशनी करके पढ़ने-लिखने बैठेंगे तो तोताराम की नींद खुल जायगी, नङ्गे पाँव घर में ही टहलने लगा।

टहलते-टहलते मन में आया कि चलकर पाँड़ेजी को देखें, कुछ बीमारी तो नहीं हो गई है। मेरे दोनों कमरों के बाद ही उनका कमरा था। जाकर देखा तो दरवाज़ा खुला है। पुकारने पर भी कुछ जवाब नहीं मिला तब मैं भीतर घुस गया। सामने के दरवाज़े के पास ही स्विच था। उससे रोशनी करके देखता हूँ तो कोई भीतर नहीं है। रास्ते की ओरवाले जँगले से बाहर देखने पर मालूम हुआ कि उधर भी पाँड़ेजी नहीं हैं।

मन में विस्मित हुआ। इतनी रात को कहाँ गये हैं, जानने की चिन्ता हुई। मन में उसी दम यह बात आई कि डाक्टर के यहाँ दवा लाने गये होंगे। झटपट वहाँ पहुँचा तो डाक्टर का दरवाज़ा भीतर से बन्द है। रात बहुत गई है, वे भीतर सो गये होंगे। बन्द दरवाज़े पर कुछ देर ठहरकर मैं जब लौटा तब भीतर से किसी के बोलने का शब्द सुनाई दिया। गला दबाकर उत्तेजित स्वर में पाँड़े कुछ कह रहे हैं।

मन में आया कि छिपकर सुनें क्या बातें करते हैं, लेकिन तुरन्त वह इरादा छोड़ दिया। क्या जानें, पाँड़ेजी अपने रोग की बात कर रहे हैं। मुझे वह प्राइवेट बात सुनना उचित नहीं। पञ्जे के बल धीरे-धीरे ऊपर आ गया। घर पहुँचकर देखता हूँ तो तोताराम वैसे ही पड़े हैं। मुझे देखकर उन्होंने गर्दन उठाई और कहने लगे —"क्या पाँड़े घर में नहीं हैं?"

मैं—नहीं मालूम कहाँ गये हैं। तुम जागते ही हो क्या?

तो०—हाँ, पाँड़ेजी नीचे डाक्टर के घर में हैं।

मैं—तुमको कैसे मालूम हुआ ?

तो॰—कैसे मालूम हुआ, जानना चाहते हो तो इसी तकिये के नीचे कान लगाकर सुन लो।

अब मैं उन्हीं के सिरहाने के पास कान लगाकर पड़ रहा। कुछ देर बाद आवाज़ कान में आने लगी। पहले तो नहीं लेकिन पीछे साफ़ सुनाई देने लगा—डाक्टर सुखदेवप्रसाद कह रहे हैं—"आप तो बड़े जोश में आ गये हैं यह आपका दृष्टिभ्रम है और कुछ नहीं। नींद में ऐसा भ्रम कभी कभी हो जाता है। मैं दवा देता हूँ, आप खाकर सो रहिए। कल सबेरे जागने पर आपको ऐसा ही विश्वास रहेगा तो जो मन में आवे कीजिएगा।" जवाब में पाँड़े ने क्या कहा सो तो साफ़ सुनाई नहीं दिया, लेकिन कुर्सी के खड़कने से मालूम हुआ कि दोनों उठ खड़े हुए हैं। मैं भी भू-शय्या छोड़कर बैठ गया। डाक्टर का मकान मेरे कमरे के नीचे ही है यह मुझे याद नहीं था। पूछा—"लेकिन बात क्या है यार, पाँड़ेजी को हुआ क्या है ?"

मेरी बात पर तोताराम को जम्हाई आने लगी। कहा—"भगवान् जानें क्या हुआ है। अब रात ज़्यादा गई है, चलो अपने बिछौने पर सो रहें।"

मुझे सन्देह हुआ। मैंने पूछा—"तुम इस तरह ज़मीन पर क्यों पड़े थे ?"

तो॰—भाई, दिन भर घूमते-घूमते थक गया था। यहाँ आके यह फ़र्श देखा कि ठण्डा है, बस पड़ रहा। नींद भी आने लगी थी लेकिन इन लोगों के बात करने से उचट गई।

इसी समय सीढ़ी पर पाँड़े का धम धम सुनाई दिया। वे ऊपर आकर अपने कमरे में गये और ज़ोर से दरवाज़ा बन्द कर लिया।

घड़ी में देखता हूँ तो ग्यारह बज रहा है। तोताराम सो गये हैं। सारा मेस निःस्तब्ध हो पड़ा है। मैं बिछौने पर लेटा और पाँड़े की बातों पर विचार करता हुआ सो गया।

जब तोताराम के जगाने से उठ बैठा तब देखता हूँ कि सबेरा हो गया है। तोताराम घबराकर कह रहे हैं—"उठो! उठो! मामला बड़ा गड़बड़ हो रहा है।"

मैं क्यों क्या हुआ?

तो०—मालूम नहीं क्या बात है। पाँड़ेजी दरवाज़ा नहीं खोलते। बहुत पुकारा गया, कुछ आहट नहीं मिलती।

"तो उनको हुआ क्या है?"

"कौन जाने क्या हुआ है। तुम आ जाओ जल्दी।" कहकर तोताराम झटपट बाहर चले गये। मैं भी उनके पीछे ही पीछे बाहर आया तो देखा कि पाँड़े के द्वार पर सब लोग जमा हैं। अपनी-अपनी अक़्ल का अटकल सब कर रहे हैं। पुकारना और दरवाज़ा पीटना जारी है। नीचे से डाक्टर बाबू भी आ गये हैं। सब लोगों को बड़ी चिन्ता है। सब के चेहरे पर घबराहट और विषाद है। पाँड़े जी इतनी देर तक कभी सोते नहीं थे। अगर आज सो भी गये तो इतना चिल्लाने पुकारने और द्वार पीटने पर भी जागते क्यों नहीं हैं!

तोताराम ने डाक्टर के पास जाकर कहा—"देखिए आप दरवाज़ा तोड़वा दीजिए। हमको तो ढङ्ग अच्छा नहीं जान पड़ता।"

डा॰—हाँ, यह तो मालूम ही हो रहा है। ज़रूर वे मूर्च्छित या बेहोश पड़े हैं, नहीं तो जवाब ज़रूर देते। अब देर करना ठीक नहीं है तोतारामजी! दरवाज़ा तोड़ डालिए।

डेढ़ इंच मोटे तख़्ते के किवाड़ हैं। उस पर भुआसी ताला लगा है। इस समय तीन-चार आदमियों ने एक साथ ज़ोर लगाया। वह ताला टूटकर झनाके के साथ दरवाज़ा खुल पड़ा। अब भीतर द्वार के सामने ही जो वस्तु उन लोगों ने देखी उससे किसी के मुँह से कुछ बात नहीं निकली। सब के सब अवाक् हो गये।

सब ने चकित विस्मित होकर देखा कि सामने ही पाँड़ेजी उतान पड़े हैं। उनका गला इस ओर से उस छोर तक कटा हुआ है। सर और धड़ के बीच मानों रक्त का एक गलतकिया सा बिछा हुआ है और उनके फैले हुए दाहने हाथ में ख़ून से भरा हुआ एक छुरा अब भी हिंसा की हँसी हँस रहा है।

हम लोग चुपचाप वहीं कुछ देर तक जड़वत् खड़े रहे। कुछ देर पर तोताराम और डाक्टर साथ ही भीतर घुसे। डाक्टर ने विह्वल नेत्रों से पाँड़े की बीभत्सता भरी देह देखी। फिर काँपते हुए बोले ओफ़! क्या हो गया। अन्त को पाँड़ेजी ने किस कारण आत्मघात कर लिया!

तोताराम की नज़र अभी मुर्दे की ओर नहीं गई थी। उनकी दोनों आँखें धारदार तलवार की तरह घर में चारों ओर चल रही

थीं। उन्होंने बिछौने को एक बार अच्छी तरह देखा। रास्ते की ओर के खुले जँगले से झाँका फिर शान्त रूप से लौटकर कहा—"नहीं डाक्टर साहब! यह आत्महत्या नहीं, भयङ्कर ख़ून है? मैं पुलिस में ख़बर देने जा रहा हूँ। आप लोग यहाँ की सब चीज़ें जहाँ की तहाँ रहने दीजिए। ख़बरदार! कुछ भी ज़रा इधर-उधर न होने पावे।"

डाक्टर ने अकचकाहट दिखाकर कहा—"कैसे कहते हो तोता-रामजी! ख़ून हुआ कैसे? भीतर से तो दरवाज़ा बन्द था। इसके सिवाय वह तो—" यही कहकर डाक्टर ने पाँड़े के हाथ का ख़ून भरा छुरा दिखलाया। तोताराम ने सिर हिलाते हुए कहा—"सो हुआ करे। यह ख़ून है डाक्टर साहब! आप लोग यहीं रहिए। मैं अभी पुलीस को लेकर आता हूँ न।" तोताराम उसी दम बाहर चले गये। डाक्टर ने कपार पर हाथ देकर कहा—"ओफ़! हमारे मकान में भी आज यह काण्ड हो गया!"

३

पुलीस ने पहुँचकर मेस के नौकर, रसोइया, ब्राह्मण से लेकर हम लोगों तक सबका इज़हार बयान लिया। जिसको जो मालूम था सब कह सुनाया। लेकिन किसी की बात से ऐसी कोई बात नहीं मिली जिससे पाँड़े की मृत्यु का कारण जाना जा सके। पाँड़ेजी का वहाँ कोई दुश्मन नहीं था। किसी से उनका कभी वैर-विरोध नहीं हुआ। मेस और आफ़िस के सिवाय और कहीं उनका कोई हितमित्र नहीं था। कहीं कुछ पता नहीं लगा कि कभी किसी से उनकी वहाँ मिताई थी। वह हर शनिवार को घर जाते थे। दस-बारह बरस से उनका यह जाना-आना जारी था, कभी इसका फेर-बदल नहीं हुआ। कुछ दिनों से उनको बहुमूत्र का रोग हो गया है। इतनी ही थोड़ी सी बात इज़हार में मालूम हुई।

डाक्टर ने भी इज़हार दिया। उन्होंने जो कुछ बयान किया उससे पाँड़े की मृत्यु का भेद तो कुछ नहीं मिला, उलटे वह और जटिल हो पड़ा। उनका बयान हूबहू नीचे दिया जाता है :—

"गत बारह बरस से पाँड़ेजी हमारे मेस में रहते हैं। उनका मकान कल्यान के पास है। वह यहाँ किसी सौदागर के आफ़िस में काम करते रहे हैं। डेढ़ सौ रुपया महीना पाते रहे हैं। इतने से वेतन में बम्बई नगर में जेण्टेलमेन के रूप में रहना असम्भव बात है, इसी से

मेस में डेरा लेकर गुज़ारा करते रहे हैं। इसमें जितने हैं सबकी यही दशा है।

"जहाँ तक मैं जानता हूँ, पाँड़ेजी सीधे-सादे स्वभाव के कर्त्तव्यनिष्ठ आदमी थे। कभी किसी का क़र्ज़ नहीं रखते थे। कोई नशा-पानी या व्यसन उनका मैंने नहीं देखा। मेस के सब लोग उनका यह गुण जानते हैं।

"मैंने तो इन बारह वर्षों में कभी उनके विषय में कुछ भी अस्वाभाविक या सन्देह उपजानेवाली बात या कोई घटना नहीं देखी। इधर कुछ महीनों से उनको बहुमूत्र हो गया था। मैं उनका इलाज कर रहा था। और कभी कोई मानसिक रोग मैंने उनमें नहीं पाया। कल ही उनकी चाल-चलन में एक नई बात मेरे देखने में आई है।

"बात यों हुई कि मैं अपने दवाख़ाने में बैठा था। रात के दस बज गये थे। पाँड़ेजी ने आकर कहा—'डाक्टर साहब! आपसे मैं कुछ गुप्त बात कहूँगा।' मैं तो सुनते ही उकताकर उनका मुँह ताकने लगा। वे बहुत घबराये हुए दीख पड़े। मैंने पूछा—'क्या बात है पाँड़ेजी?' वे इधर उधर चौकन्ना होकर देखते हुए धीरे धीरे कहने लगे—'इस घड़ी नहीं, मैं और वक़्त कहूँगा आपसे।' यही कहकर वे तुरत आफ़िस चले गये।"

"शाम को जब मैं, तोताराम उनके साथी सहित अपने दवाख़ाने में बैठकर बातें कर रहा था. उस समय देखा गया तो दरवाज़े के पास किवाड़ से लगे पाँड़ेजी हम लोगों की बातें सुन रहे थे। जब

उनको पुकारा गया तब झटपट बात बनाकर चले गये। हम लोग उनकी यह हरकत देखकर अवाक् हो गये, कहने लगे कि पांड़ेजी को आज हो क्या गया है !

"उसके बाद रात के दस बजे चोर की तरह बहुत धीरे धीरे मेरे पास आये। चेहरे से मालूम हुआ कि उनके भीतर बड़ी हड़बड़ी है। दिमाग़ ठिकाने नहीं है। दरवाज़ा आप ही बन्द करके बैठे और फ़ज़ूल बकबक करने लगे। कभी तो कहा कि सोते में मैं भयङ्कर स्वप्न देख रहा था, कभी कहा एक भयानक गुप्त भेद मालूम हुआ है। मैंने बहुत समझाकर उन्हें ठंढा करना चाहा लेकिन वे बकते ही चले गये, फिर अन्त को मैंने उनको सोने के लिए एक पुड़िया देकर कहा—'आप खाकर सो रहिए; नींद आ जायगी फिर सबेरे हम आपकी बात सुनेंगे।' वह पुड़िया की दवा लेकर ऊपर चले आये।

"हमारे साथ उनकी वही अन्तिम भेंट थी। उसके बाद आज सबेरे यह काण्ड दिखाई दिया। उनका भाव, उनकी दशा देखकर मुझे सन्देह तो ज़रूर हुआ था, लेकिन ऐसा मन में हरगिज़ नहीं आया था कि जोश में आकर एकदम आत्मघात कर डालेंगे।"

जब डाक्टर बयान देकर चुप हुए तब दारोग़ा ने पूछा—"तो आप क्या इसको आत्मघात समझते हैं?"

डा०—जी हाँ! इसके सिवा और हो क्या सकता है? लेकिन तोताराम कहते हैं आत्मघात नहीं कुछ और बात है। इस बारे में शायद उनको और अधिक मालूम हो तो वे कह सकते हैं।

अब दारोग़ा ने तोताराम की ओर फिरकर कहा—"आप ही तोताराम हैं न ! आप जो कहते हैं आत्मघात का यह मामला नहीं है, आपके ऐसा समझने का कारण क्या है ?"

तो०—हाँ, कारण ज़रूर है। कोई आदमी अपने हाथ से इस तरह अपना गला काट ही नहीं सकता। आपने तो लाश देख ली है। आप ख़ुद विचार कर लीजिए यह बात हो नहीं सकती। ऐसा होना बिलकुल असम्भव है।

दारोग़ा ने कुछ देर तक सोचकर कहा—"अच्छा, ख़ूनी कौन है ? आपको कुछ सन्देह होता है किसी पर ?"

तो०—जी नहीं।

दा०—अच्छा ख़ून का कारण क्या है, कुछ अनुमान कर सकते हैं ?

इस समय तोताराम ने सड़क की ओर का जँगला दिखलाकर कहा—"यही ख़ून का कारण है !"

दारोग़ा चकित होकर बोले—"जँगला ख़ून का कारण है ! तो आप कहना चाहते हैं कि इसी जँगले से ख़ूनी घर में घुसा था ?"

"जी नहीं ! ख़ूनी तो सदर दरवाज़े से ही भीतर आया था।"

दारोग़ा ने मुसकुराकर कहा—आपको जान पड़ता है, याद नहीं है कि दरवाज़ा भीतर से बन्द था।

"याद है।"

दारोग़ा ने व्यङ्ग भरे शब्दों में कहा—"तो क्या पाँड़ेजी ने घायल होने के बाद दरवाज़ा बन्द कर दिया था ?"

तो०—जी नहीं! ख़ूनी ने पाँड़ेजी की जान मारकर बाद को बाहर से दरवाज़ा बन्द कर दिया है।

दा०—ऐसा हो कैसे सकता है!

तोताराम ने ओठ दाबते हुए मुसकुराकर कहा—"सहज ही हो सकता है। थोड़ा विचार करने से ही आप समझ सकेंगे।"

डाक्टर इतनी देर तक दरवाज़े की ओर ही देख रहे थे। बोल उठे—"ठीक बात तो है, दरवाज़ा तो सहज ही बाहर से बन्द हो सकता है। इतनी देर तक मेरी समझ में यह बात आई ही नहीं थी। देखते नहीं, दरवाज़े पर ऐसा ताला है।"

दारोग़ा कुछ झेंप गये। बोले—"हाँ यह तो हो सकता है।"

तोताराम ने कहा—"बाहर खींच देने पर ही दरवाज़ा बन्द हो जायगा, फिर खुलेगा तब भीतर से ही खुलेगा। बाहर से नहीं खुल सकता।"

दारोग़ा अपने काम में प्रवीण थे। हाथ पर गाल धरकर कुछ देर तक सोचते रहे, फिर बोले—"बात तो सही है लेकिन एक बात खटक रही है। पाँड़ेजी रात को दरवाज़ा खोलकर सोये रहे इसका कोई प्रमाण है!"

तो०—जी नहीं, बल्कि उलटे इसका प्रमाण है कि वे दरवाज़ा बन्द करके सोये थे। मैं जानता हूँ इस बात को।

मैंने कहा—'मैं भी जानता हूँ। मैंने उनको दरवाज़ा बन्द करते सुना था।

डा०—तब उन्होंने ख़ूनी को भीतर आने के लिए उठकर दरवाज़ा खोल दिया, यह भी तो सम्भव नहीं जान पड़ता।

तो०—सो बात नहीं; लेकिन शायद आपको याद नहीं रहा कि इधर कई महीने से उनको एक रोग हो गया था।

डा०—हाँ! हाँ! ठीक कहते हैं बाबू तोतारामजी! आपकी बात बहुत ठीक है। बहुमूत्र रोग की बात तो मुझे एकदम भूल ही गई थी।

अब दारोग़ाजी मुरब्बियाने सुर में बोले—"वाह तोताराम बाबू! मैं देखता हूँ आप तो बड़े इंटेलिजेण्ट हैं। पुलीस में क्यो नहीं घुस जाते। इसमें आपका दरजा बहुत आगे बढ़ सकता है। लेकिन देखते हैं कि अगर यह ख़ून का केस है तो ख़ूनी कोई ऐसा वैसा नहीं, मँजे हाथ का पक्का खिलाड़ी है। किसी पर आप लोगों का सन्देह होता है?"

यही कहकर दारोग़ा सब का मुँह बारी-बारी से ताकने लगे। सब ने चुपचाप मूँड़ हिलाकर नाहीं कर दी। लेकिन डाक्टर कहने लगे—"देखिए साहब, इस महल्ले में हर महीने एक-दो ख़ून होते रहते हैं। आप लोगों को तो यह सब मालूम ही है। अभी परसों हमारे मेस के सामने ही एक ख़ून हो चुका है। यह सब देखकर मैं तो समझता हूँ ये सब ख़ून एक ही में गुँथे हुए हैं। एक का पता लगने से सबका पता लग जायगा। अगर पाँड़ेजी का ख़ून हुआ है तब।"

दा०—सो हो सकता है लेकिन और ख़ूनों का पता लगने की आशा में अगर बैठा रहा जाय तो मैं समझता हूँ अन्तकाल तक बैठे ही रहना पड़ेगा।

तोताराम ने कहा—दारोग़ाजी, अगर आप इस ख़ून का पता लगाना चाहें तो इस जँगले की बात पर ख़ूब ग़ौर कीजिएगा।

दारोग़ा ने कहा—"हम लोगों को सब बातों पर ग़ौर करना होगा तोताराम बाबू! अब मैं आप सब लोगों का घर राई रत्ती तलाश करके देखूँगा।"

इसके बाद ही ऊपर नीचे सब कमरों की बड़ी सावधानी से तलाशी ली गई। लेकिन कहीं कुछ भी ऐसी चीज़ नहीं मिली जिससे इस मृत्यु पर प्रकाश पड़ता। पाँड़ेजी के घर की भी बड़ी छान-बीन के साथ तलाशी की गई। लेकिन वहाँ दो-चार पारिवारिक चिट्ठी-पत्री के सिवाय और कुछ नहीं पाया गया। छुरे का ख़ाली घर अर्थात् छुरादानी बिछौने के पास पाई गई। पाँड़ेजी अपने हाथ से अपनी हजामत बनाया करते थे यह हम सब लोग जानते थे। वह छुरे की खोल भी लोगों ने पहचान ली। पाँड़े की लाश थाने में चालान कर दी गई। उनके द्वार पर ताला भरकर कोई दो बजे दिन में दारोग़ाजी वहाँ से विदा हुए।

पाँड़ेजी के घर तार द्वारा ख़बर भेजी गई थी। सन्ध्या होते-होते उनके लड़के और दूसरे नातेदार भी आ पहुँचे। उनके महान् शोक का वर्णन करके यहाँ पुस्तक को बढ़ा डालना अभीष्ट नहीं है। हम लोग उनके आत्मीय नातेदार न होकर भी उनकी बेदर्दी भरी मौत से बहुत दुखी हुए। इसके सिवाय अपने ऊपर भी बहुत भय सवार हो गया। कब किसकी जान चली जायगी, इसका कुछ भी ठिकाना नहीं रहा। सबके ऊपर मानो नंगी तलवार कच्चे धागे में लटकती हुई जान पड़ी।

रात को सोने से पहले डाक्टर के घर जाकर मैंने देखा तो वे उदास मन अपने दवाख़ाने में बैठे हैं। उसी एक दिन की घटना से

उनके शान्त मुखमण्डल पर काली रेखाओं की क़तार दिखाई दे रही है। मैं वहीं उनके पास बैठ गया, फिर कहा—"यहाँ तो मेस के सब लोग छोड़कर चले जाने की तैयारी कर रहे हैं डाक्टर साहब!"

डाक्टर ने मुसकुराते हुए कहा—"उन बेचारों का कौन क़सूर है विजय बाबू! आप ही कहिए, जहाँ ऐसी घटनाएँ होती हैं वहाँ कैसे कोई रहना चाहेगा! लेकिन एक बात हमारी समझ में नहीं आ रही है कि इसको ख़ून का मामला कैसे कहा जा सकता है! और अगर ख़ून ही हो तो मेस के बाहरवाले किसी आदमी का तो यह काम हो नहीं सकता। पहली बात तो यह कि वह ख़ून करनेवाला ऊपर गया कैसे! आप लोग सभी जानते हैं कि सीढ़ी का दरवाज़ा रात को बन्द रहता है। अच्छा मान भी लें कि किसी तदबीर से वह ऊपर गया, लेकिन पाँड़े के छुरे से उनका ख़ून कैसे किया! यह भी हो नहीं सकता, इससे इतना ज़ाहिर है कि बाहर के किसी आदमी ने यह काम नहीं किया है। तब रह गये वे आदमी जो इस मेस में रहते हैं। इनमें से कोई ऐसा है जो पाँड़े जी का ख़ून कर सके! सबको हम लोग बहुत दिन से जानते हैं। कोई आदमी यहाँ का ऐसा नहीं जो ऐसा विकट बेदर्दी का काम कर सके।"

मैंने चौंककर कहा—"तोताराम?"

डाक्टर ने खाँस-खँखारकर कहा—"यह तोताराम आपको कैसा आदमी जान पड़ता है?"

मैंने कहा—"अरे तोताराम! नहीं; नहीं वह बेचारा ऐसा काम नहीं कर सकेगा। तोताराम भला किस वास्ते पाँड़े जी को ....."

डा०—तब तो आप ही की बात से साबित है कि मेस के किसी आदमी का यह काम नहीं है। तब आप विचार कीजिए कि कौन बाक़ी रह जाता है। मैं देखता हूँ कि रह गई बात यही कि पाँड़ेजी ने आत्महत्या की हो।

मैं—लेकिन आत्महत्या का भी तो कारण चाहिए। आत्मघात संसार में बहुत संगीन पातक है। जब संसार में आदमी को किसी तरह का कुछ भी भरोसा नहीं रह जाता, उसका जीवन जब असह्य हो उठता है तब वह आत्महत्या करता है। आत्महत्या के लिए जैसे कोई संगीन कारण होना, वैसे ही उसके लिए हृदय में बहुत बल होना चाहिए।

डा०—उस बात पर भी मैंने ख़ूब विचार कर लिया है। आपको याद होगा मैंने आपसे कहा था कि इस महल्ले में कोकेन बेचने-वालों का एक गुप्त अड्डा है। लेकिन उस गरोह के सरदार का किसी को कुछ पता नहीं है।

"हाँ याद है, आपने कहा था।"

डाक्टर अब धीरे-धीरे कहने लगे—"अच्छा मान लीजिए कि पाँड़ेजी उन लोगों के सरदार रहे हों।"

मैं तो डाक्टर की बात सुनकर काँप गया। कहा—"अरे! ऐसा कभी हो सकता है?"

डा०—सुनिए विजय बाबू, ऐसा कुछ भी नहीं है जो संसार में न हो सके। असम्भव बात इस दुनिया में कुछ नहीं है, बल्कि कल रात को पाँड़ेजी ने मुझसे जो बातें की हैं उनसे इसी सन्देह की पुष्टि होती है।

सम्भव है कि पाँड़ेजी ख़ूब डर गये रहे हों। जब आदमी बहुत डर जाता है तब हवास में नहीं रहता। अगर इसी हालत में उन्होंने आत्महत्या कर डाली हो तो आश्चर्य क्या है? आप विचार लीजिए, यह अनुमान क्या सङ्गत नहीं जान पड़ता?

इस बात को सुनने पर मेरा मग़ज़ चक्कर काट रहा था। मैंने कहा—"नहीं कह सकता डाक्टर साहब! मैं तो ऐसा ख़याल ही नहीं कर सकता। आप चाहें तो अपना सन्देह पुलीस को ज़ाहिर कर सकते हैं।"

इतना सुनने पर डाक्टर वहाँ से उठ खड़े हुए। बोले—"अच्छी बात है। मैं कल कहूँगा। जब तक इसका निबटारा नहीं हो जाता, मुझे शान्ति नहीं मिलेगी।"

—

४

इस तरह दो-तीन दिन किसी तरह बीत गये। मन में बड़ी अशान्ति थी। ऊपर से सी० आई० डी० विभाग के कर्मचारियों की आवा-जाही और उनके सवाल-जवाब के मारे जी ऊब उठा था। मेस के सब लोगों का नाकों दम था। लोग वहाँ से भागने को तैयार हो रहे थे। लेकिन किसी को जाने की हिम्मत भी नहीं हो रही थी। क्या जानें, भाग जाने से पुलीस का और सन्देह कपार पर आ गिरे तो उल्टे लेने के देने पड़ेंगे।

डेरे के किसी आदमी पर सन्देह का जाल चारों ओर से घिर रहा था, इसका इशारा मिलने लगा। लेकिन वह सन्देह किस पर है, इसका अनुमान नहीं कर सका। रह-रहकर डर के मारे भीतर धुकुर-पुकुर हो रहा था। क्या जानें, पुलिस हमारे ही ऊपर सन्देह करती हो।

एक दिन सवेरे मैं और तोताराम डाक्टर के घर में बैठे अख़बार पढ़ रहे थे। एक साधारण साइज़ का बक्स दवाओं से भरा हुआ डाक्टर के यहाँ आया था। उसी को खोलकर वह आलमारी में सजा रहे थे। पैकिंग केस पर अमेरिका का ट्रेड मार्क था। डाक्टर देशी दवाओं का व्यवहार नहीं करते थे। काम पड़ने पर जर्मनी या अमे-रिका से दवाइयाँ मँगवाया करते थे। हर महीने एक बक्स के हिसाब से दवा उनके पास आया करती थी।

तोताराम ने अख़बार को ज़रा नीचे करके डाक्टर से पूछा—"क्यों डाक्टर बाबू! आप विलायत से दवा क्यों मँगाते हैं? देशी दवा क्या अच्छी नहीं होती?"

डा०—देशी दवाइयाँ भी अच्छी होती हैं। लेकिन मुझे उनसे तृप्ति नहीं होती।

तोताराम ने उनके बक्स से दवा भरी एक शीशी उठाई जिस पर विक्रेता का नाम था। पढ़कर कहा—"एरिक एण्ड ग्रवेल यही सबसे बढ़िया दवाइयाँ तैयार करता है?"

"हाँ! हाँ!"

तो०—अच्छा, होमियोपैथी से सचमुच रोग अच्छा हो जाता है? मुझे तो विश्वास नहीं होता कि एक बूँद दवा से रोग अच्छा होता है। भला एक बूँद पानी से रोग अच्छा होगा?

डाक्टर ने मुसकुराकर कहा—"इतने आदमी जो दवा लेने आते हैं वे क्या लड़क-खेल करते हैं?"

तो०—मैं समझता हूँ रोग भोगकर आप ही अच्छा हो जाता है। रोगी समझता है कि दवा से अच्छा हुआ है। विश्वास से भी बहुत समय काम सिद्ध होता ही है।

डाक्टर ने हँस दिया। कुछ बोले नहीं। कुछ देर पर उन्होंने पूछा—"इस अख़बार में हम लोगों के मेसवाली कुछ ख़बर है?"

"हाँ है।" कहकर मैंने ख़बर पढ़ दी। उसमें लिखा था—"उस अभागे पाँड़े के ख़ून का अब तक कुछ पता नहीं लगा। पुलिस के सी० आई० डी० विभाग को यह केस सौंप दिया गया है।"

कुछ अनुसन्धान लग चुका है। आशा है, शीघ्र ही असामी गिरफ़्तार हो जायगा।"

"गिरफ़्तार नहीं ख़ाक होगा। आशा किया करें।" इतना कहकर डाक्टर ने पीछे देखा, बोले—"अरे दारोग़ा जी!"

दारोग़ा कमरे के भीतर आये। साथ में दो कांस्टेबल थे। ये दारोग़ा वही थे जो पहले एक बार उस दिन तहक़ीक़ात करने आये थे। वे एकदम तोताराम के सामने जाकर बोले—"आपके नाम वारण्ट आया है। थाने तक चलना होगा। कुछ गड़बड़ मत कीजिए। रामफल! लगाओ हथकड़ी।" एक कांस्टेबल ने झट तोताराम को हथकड़ी कस दी। टनाक से बन्द होने की आवाज़ आई।

हम लोग भी डरते हुए उठ खड़े हुए। तोताराम ने कहा—"यह क्या करते हैं आप?"

दा०—यह देखिए वारण्ट है। गोविन्द पाँड़े का ख़ून करने के क़सूर में आपको मैं गिरफ़्तार करता हूँ। अच्छा, आप दोनों आदमी इनकी पहचान कीजिए कि तोताराम यही हैं।

हम लोगों ने चुपचाप, यंत्र-चालित पुतले की तरह, डरते हुए सिर हिलाकर हाँ किया। तोताराम ने हँसकर कहा—"ख़ैर, अन्त में आपने मुझे ही गिरफ़्तार किया! अच्छा चलिए थाने पर। देखो विजय बाबू, कुछ चिन्ता नहीं करना मैं बेक़सूर हूँ। पुलीस को अपनी इस कार्रवाई पर पीछे पछताना पड़ेगा। एक भाड़े की गाड़ी मेस के सामने आ खड़ी हुई थी। उसी पर तोताराम को बिठाकर पुलीस-दल वहाँ से बिदा हो गया।

ज़रदी चढ़ा चेहरा लिये डाक्टर कहने लगे—"अरे! तोताराम ही तब तो—बड़ा भयानक आदमी है! चेहरा देखकर आदमी पहचानना बड़ा ही कठिन है विजय बाबू!"

मेरे मुँह से तो कुछ बात नहीं निकली। यह तोता ही ख़ूनी है क्या? कई दिन एक ही डेरे में साथ रहने से मेरा तो उस पर स्नेह हो गया था। तोता का स्वभाव तो ऐसा अच्छा है कि मेरे भीतर घर कर गया था। यह तोताराम ख़ूनी है! बड़े आश्चर्य की बात है। मेरे हृदय में यह बात कभी नहीं आई थी। इस समय विस्मय से मेरा मन बहुत विचलित हो उठा।

डाक्टर ने कहा—"इन्हीं बातों का विचार करके हमारे हिन्दू धर्म्म में अनजाने आदमी को जगह देना मना किया गया है। उस समय किसको मालूम था कि यह आदमी इतना भयङ्कर है?"

मेरे भीतर बड़ी खलबली थी। कुछ बात नहीं सुहाती थी। अपने कमरे में बिछौने पर पड़कर मैंने दरवाज़ा बन्द कर लिया। नहाने-खाने का मन नहीं हुआ। एक ओर तोताराम का सामान बिखरा पड़ा था। उस ओर देखकर मेरी आँखों में आँसू आ गये। इस घड़ी मुझे मालूम हुआ कि तोताराम पर मेरा कितना स्नेह हो गया था।

तोताराम जाते समय कह गये हैं कि वे बेक़सूर हैं। तो क्या पुलीस ने भूल से उन्हें गिरफ़ार किया है? इतना मन में आते ही मैं बिछौने से उठ बैठा। जिस रात में पाँड़े का ख़ून हुआ उस रात की सब बातें मैं याद करने लगा।

तोताराम फ़र्श पर पड़े पाँड़ेजी और डाक्टर की बातें सुनते थे। किस मतलब से उनकी बातें सुन रहे थे? उसके बाद मैं ग्यारह बजे सो गया। एकदम सबेरे जब उठा तब तोताराम ने ही मुझे जगाया था। इतने में अगर तोताराम ने........लेकिन तोताराम शुरू से कह रहे हैं कि यह आत्महत्या नहीं ख़ून है। तो क्या जो ख़ूनी है वह ऐसी बात कहकर आप ही अपने गले में इस तरह फाँसी लगावेगा! लेकिन ऐसा भी हो सकता है कि अपने ऊपर से सन्देह को झाड़ पोंछकर फेंक देने के वास्ते ही तोताराम ने ये बातें कही हों कि पुलीस समझेगी तोता जब ज़ोर से यह बात कह रहे हैं तब वे हरगिज़ ख़ूनी नहीं हैं।

इसी तरह नाना प्रकार की चिन्ता करता हुआ मैं मन ही मन छटपटाने लगा। फिर उठकर कमरे में टहलने लगा। फिर खाट पर आ बैठा। इस तरह दोपहर बीत गया।

तीसरे पहर को मन में आया कि किसी वकील के यहाँ चलकर सलाह लें कि ऐसी दशा में क्या करना चाहिए। लेकिन किसी वकील से यहाँ कुछ जान पहचान नहीं है। फिर भी वकील का मिलना कुछ कठिन नहीं होगा। यही समझकर उठा और कुर्त्ता पहनकर बाहर होना ही चाहता था कि किसी ने किवाड़ पर हाथ थपथपाया। खोलकर देखता हूँ तो सामने ही तोताराम खड़े हैं।

मैंने "अरे तोताराम!" कहकर गले लगा लिया। वह दोषी है या निर्दोष, यह भावना जो थोड़ी देर पहले मन में धमाचौकड़ी मचा रही थी वह एकदम दूर हो गई। सूखा मुँह, रूखे बाल लिये तोताराम

ने हँसकर कहा—"हाँ भैया! हमीं हैं। बड़े सङ्कट में पड़ गया। एक आदमी कठिनता से ज़ामिन हो गया तब छूटकर आया हूँ। नहीं तो आज हवालात में रहना पड़ता। तुम कहाँ जा रहे हो?"

मैंने कहा—"वकील के यहाँ जा रहा था।"

स्नेह से तोताराम ने मेरा हाथ धरकर कहा—"क्या मेरे वास्ते? अब इसकी ज़रूरत नहीं है मित्र! कुछ दिनों के लिए तो मुझे रिहाई मिल गई है।"

अब हम दोनों कमरे में गये। तोताराम ने मैले कपड़े उतारते हुए कहा—"मग़ज़ भन्ना रहा है भाई! दिन भर नहाना-खाना नहीं हुआ। तुमने भी, मालूम होता है, नहाया खाया नहीं है। चलो यार नहाकर कुछ मुँह में तो डालें। पेट कुलकुला रहा है भूख के मारे।"

मैंने उकताकर पूछा—"अच्छा तोताराम तुम...तुमने..."

"तुमने क्या! मैंने ख़ून किया है या नहीं?" कहकर तोताराम ने कहा—"वह बात पीछे होगी विजय बाबू! इस घड़ी तो पेट में कुछ जाना चाहिए। माथा धमक रहा है। मैं समझता हूँ, स्नान-भोजन के बाद सब ठीक हो जायगा।"

इसी समय डाक्टर कमरे में आये। उनको देखते ही तोताराम बोले—"मैं तो डाक्टर बाबू मलती चाँदी की चौअन्नी की तरह फिर लौट आया। पुलीस ने भी मुझे नहीं लिया, लौटा दिया है मुझे।"

डाक्टर शुकदेव ने कुछ गम्भीरता लेकर कहा—"देखिए तोताराम जी! आप लौट आये यह अच्छी बात है। मैं समझता हूँ उन लोगों ने आपको बेक़सूर समझकर ही छोड़ा होगा। लेकिन मेरे

यहाँ तो आपका··· समझते तो हई हैं आप! यहाँ दस भले आद-मियों का डेरा है। यों ही सब भाग भाग मचाये हुए हैं। उस पर आपका रहना तो...। देखिए आप मन में कुछ दूसरा मत समझिए! आपसे हमारा कुछ द्वेष-विरोध तो है नहीं. लेकिन··"

तोताराम बात काटकर बोले—"नहीं, नहीं! वह बात नहीं है। मैं इस घड़ी दाग़ी असामी बना हूँ। मुझे यहाँ रखकर आप लोग भी चोंथ बकोट में पड़ें यह मैं हरगिज़ पसन्द नहीं करूँगा। कहिए, आप क्या आज ही मुझे चले जाने को कह रहे हैं?"

डाक्टर कुछ देर चुप रहकर बोले—"नहीं, इस रात के वास्ते कुछ बात नहीं लेकिन कल सवेरे ही—"

तो०—सो तो बनी बात है डाक्टर साहब! कल मैं आप लोगों को तकलीफ़ नहीं दूँगा। अपने लिए जगह तो ढूँढ़ लूँगा। अगर कहीं नहीं ठिकाना होगा तो वह पारसी होटल तो हई है।

यही कहकर तोताराम ने हँस दिया। डाक्टर ने पूछा—"अच्छा, थानेवाले आपको ले गये तो वहाँ किया क्या?" तोताराम ने संक्षेप में कहकर स्नान-भोजन कर रास्ता लिया। अब डाक्टर मुझसे कहने लगे—"तोताराम मन में नाराज़ तो हो रहे हैं लेकिन भाई! कुछ उपाय नहीं है। मैं करूँ क्या? एक तो मेस की बदनामी हो चुकी है। ऊपर से पुलीस का गिरफ़्तारी असामी रहेगा तो कैसे ठीक होगा। आप ही कहिए?"

"हाँ, अपने लिए सबको ख़बरदारी से रहना उचित ही है" कहकर मैंने सिर हिलाया और कहा—"आपका मेस है। आप जो

उचित समझें करें। इसमें कोई क्या कह सकता है।" और गमछा काँधे पर रखकर स्नान करने चला गया। उदास मन डाक्टर वहीं बैठे रहे।

स्नान करके कमरे में आया तो देखा कालू बाबू आफ़िस से लौटकर आ गये हैं। सामने तोताराम को देखकर वे ऐसे सहमे जैसे भ्रम का भूत देखकर आदमी सहम जाता है। उनके चेहरे पर जर्दी दौड़ गई। बोल उठे—"अरे! तोता बाबू! आप तो···आप?"

तोताराम हँसकर कहने लगे—"मैं ही हूँ कल्लू बाबू! आपको विश्वास नहीं हो रहा है क्या?"

"सब ठीक है, लेकिन आपको तो पुलिसवाले—" इतना ही कहकर कल्लू बाबू अपने कमरे को चले। तोताराम हँसी करने का लोभ संवरण नहीं कर सके। धीरे से बोले—"धामिन के फूँकने से नाभि फूलने लगती है, पुलीस के छूने से बड़े-बड़े धीरों की छाती छितरा जाती है। कल्लू बाबू तो हमको देखकर ऐसे भड़क रहे हैं जैसे गेरुआवाले को देखकर श्वानदेव!"

सन्ध्या को तोताराम कहने लगे—"अरे यार, यह तो ताला बन्द नहीं हो रहा है।" मैंने देखा तो उसमें क्या कुछ बिगड़ा है, पता नहीं चलता। मकान मालिक को खबर दी गई। वे आये। देखकर बोले—"विलायती तालों की यही गति है। चलता है तब तक चलता है, नहीं तो बस! इंजिनियर बुलाना पड़ता है। इससे तो देशी ताले अच्छे होते हैं। खैर, अब कल इसकी मरम्मत करा देंगे।" कहकर डाक्टर साहब नीचे चले गये।

रात को सोने से पहले ही तोताराम ने कहा—"क्यों विजय बाबू, सिरदर्द तो बढ़ता ही जा रहा है। क्या उपाय करें कुछ बतलाओ तो!" मैंने कहा—"डाक्टर से एक पुड़िया लाकर खा क्यों नहीं लेते?"

तो०—होमियोपैथी! उससे अच्छा हो जायगा। अच्छा चलो देखें तो। इसकी भी ताक़त देख ली जाय।

मैं—चलो मेरी भी तबीअत ख़राब हो रही है।

वहाँ पहुँचकर देखते हैं तो डाक्टर दरवाज़ा बन्द करना चाहते हैं। हम लोगों की ओर वे जिज्ञासा की दृष्टि से देखने लगे। तोताराम ने कहा—"आपकी दवा का गुण देखने आया हूँ डाक्टर साहब! सिर में बड़ा दर्द है। कुछ उपाय कीजिए।"

डाक्टर ख़ुश होकर बोले—"काफ़ी उपाय है। पित्त के उभाड़ से आपको सिर-दर्द है। बैठिए, मैं अभी दवा देता हूँ।" कहकर उन्होंने आलमारी खोली और नई दवा की पुड़िया लाकर दी। कहा—"जाइए, खाकर सो रहिए। कल सवेरे सब छूमन्तर हो जायगा। दर्द, वर्द कुछ नहीं रहेगा! विजय बाबू, आपका चेहरा भी तो उतरा हुआ है। देखते हैं शरीर बड़ा कसमस है। लीजिए आप भी एक ख़ुराक! एकदम ठीक हो जायगा।"

दवा लेकर बाहर होने लगा था कि तोताराम ने कहा—"डाक्टर साहब! आप हंसराज को जानते हैं?"

चौंककर डाक्टर बोले—"नहीं तो! कौन हैं वे?"

तो०—मैं भी नहीं जानता, लेकिन आज थाने में सुना वही इस ख़ून के मामले में तैनात हुए हैं।

सिर हिलाकर डाक्टर ने कहा—"नहीं, मैं तो उनको नहीं जानता।"

ऊपर जब हम दोनों कमरे में पहुँच गये तब मैंने कहा—"अब तो तोताराम हमको सब बातें ठीक ठीक बतला दो।"

तो०—क्या बतला दें!

"तुम ज़रूर हमसे बात छिपाते हो। लेकिन अब ऐसा मत करो, हमको सब साफ़ साफ़ कहो!"

तोता पहले तो चुप रहे, फिर दरवाज़े की ओर देखकर बोले—"अच्छा, मैं कहता हूँ सब! आओ मेरे बिछौने पर पास बैठ जाओ। तुमसे छिपाने से अब नहीं बनेगा मैं देख चुका।"

मैं उनके बिछौने पर जा बैठा। वह भी किवाड़ देकर मेरे पास आ बैठे। दवा की पुड़िया अभी मेरे हाथ ही में थी। मन में हुआ कि इसको खाकर निश्चिन्त होकर सब सुनूँ। पुड़िया खोलकर मुँह में देने चला कि तोताराम ने मेरा हाथ पकड़ लिया, कहा—"अभी नहीं। मेरी सब बातें सुनकर ही खाना।"

स्वीच उठाकर तोता ने रोशनी खतम कर दी, और मेरे कान के पास मुँह करके सायँ सायँ स्वर से कहने लगे। मैं मुग्ध होकर सुनने लगा। उपन्यास से भी बढ़कर उनकी बातें सुनते सुनते मेरे रोयें खड़े होने लगे। मैं भीत और विस्मित होने लगा।

पन्द्रह मिनट तक संक्षेप में कथा समाप्त करके तोताराम ने कहा—"आज यहीं तक गोपाल भाँड़ की कथा रहे। बाकी कल।"

मैंने कहा—"गोपाल भाँड़ की बात कैसी! यह पहेली मेरी समझ में नहीं आई।"

तोताराम ने कहा—"तुमको मालूम नहीं! बङ्गाल का गोपाल बड़ा मसख़रा भाँड़ था। लड़के तक उसका नाम जानते हैं। एक बार उसने बड़े बड़े रईसों को नेवतकर बुलाया और अपने घर में उनकी दावत की। उसका आदर सहित निमंत्रण पाकर बड़े बड़े सैकड़ों आदमी ख़ुश होकर आये। उन्होंने मन में सोचा कि अच्छी सैर होगी। भाँड़ के यहाँ का नेवता है। सदा लोग भाँड़ों को बुलाकर मजलिस जमाते हैं। मसल है 'मजलिस वीरान जहाँ भाँड़ न बाशद।' बड़ी श्रद्धा से बहुत बड़े बड़े आदमी कोई नई बात देखने की अभिलाषा से उसके नेवते में पधारे। रात हो गई थी। बाहर बैठक में उसने बड़े आदर से पधराकर सबको आसन दिया। भीतर से ख़ूब छनन-मनन की आवाज़ और फोड़न की गन्ध आने लगी। कुछ देर तक यह काण्ड होता रहा। सब लोगों के मन में कुछ नई बात, नया भोजन और कुछ अपूर्व घटना के देखने का उत्साह उमड़ रहा था। ऊपर से घर का छनन-मनन और सुगन्ध से सबकी उमङ्ग दूनी हो रही थी। देखते-देखते समय हुआ। सब मेहमान भोजन-स्थान पर विराजमान हुए, सबके सामने पत्तल पड़ गया। पुरवा पानी सब देकर पतरी पर नमक दिया गया। सब लोग उत्साह से प्रतीक्षा करने लगे कि अब कोई बढ़िया पकवान आता है। भीतर का बघार, रह रहकर छनाका और पँचफोरन की ख़ुशबू आ रही थी। कई मिनट तक जब सब मेहमान सामने पतरी पर हाथ रक्खे पकवान की राह ताकते रहे तब ख़ुद गोपाल भाँड़ सबके सामने आकर बीच में हाथ जोड़े खड़ा हुआ। बोला—"बस साहबान, आज की कथा यहीं तक रहे। अब

एई पर्य्यन्त ! बाक़ी फिर।' इसी तरह हमारी कथा भी आज यहीं तक रहेगी; बाक़ी कल सब खोलकर कहूँगा।"

रेडियमवाली घड़ी देखकर उन्होंने कहा—"अभी समय है, दो बजे से पहले तो कोई घटना नहीं होती, इतने में तुम कुछ सो रहो। ठीक समय पर मैं जगा दूँगा।

५

रात के डेढ़ बजे होंगे, अँधेरे में आँख मूँदकर बिछौने पर सोया था। कान ऐसे चैतन्य थे कि साँस चलने की ध्वनि सुनाई दे रही थी। तोताराम की दी हुई चीज़ ज़ोर से दाहने हाथ की मुट्ठी में पकड़े था। पहले से इशारा ठीक था। मुँह से कुछ न कहकर तोताराम ने देह छू दी मैंने समझ लिया कि समय हो गया है। ज़ोर से मेरे श्वाँस-प्रश्वास की आवाज़ सुनाई देने लगी।

इसके बाद कब दरवाज़ा खुला, इसका तो पता नहीं लगा लेकिन तोताराम के बिछौने पर धप्प से आवाज़ हुई। कमरे में रोशनी हो गई। लोहे का डंडा हाथ में लिये मैं झपटकर उठ खड़ा हुआ।

देखता हूँ तो डाक्टर हाथ में पिस्तौल लिये दूसरे हाथ में स्विच पकड़े, और तोताराम उन्हीं के पास घुटने के बल बैठे हैं। डाक्टर ऐसे मरकहा बैल की तरह ताकता था जैसे गोली खाकर मरता हुआ बाघ शिकारी की ओर देखता है।

तोताराम ने कहा—"बड़े दु:ख की बात है डाक्टर साहब! आप ऐसे पक्के हाथवाले ने आदमी छोड़कर तकिये पर हथियार चलाया। ख़ैर, अब हिलना मत; छुरा फेंक दो। ख़बरदार हिले कि खोपड़ी ख़तम हुई। विजय बाबू! सड़क की ओर का जँगला खोल दो तो। बाहर पुलीस खड़ी है डाक्टर! ख़बरदार!"

डाक्टर ने उठकर भागना चाहा, लेकिन तोताराम ने झपटकर उसके सिर पर ऐसा मारा कि उसी दम वह धरती पर गिर पड़ा।

फिर गरदा झाड़कर उठता हुआ डाक्टर बोला—"अच्छा अब तो मैं हार गया, लेकिन पूछता यह हूँ कि मेरा अपराध क्या है।"

"अपराध क्या एक दो हैं डाक्टर कि एक शब्द में कह दूँगा। अपराधों की बड़ी लिस्ट थाने में तैयार है। वहीं धीरे-धीरे सब गुल खिलेगा।"

उसी दम पाँच कांस्टेबलों के साथ दारोग़ा ने उस कमरे में प्रवेश किया। तोताराम ने कहा—"आपने सत्यान्वेषी हंसराज का ख़ून करने की कोशिश की है, इसी क़सूर में मैं आपको पुलीस सुपुर्द करता हूँ। यही असामी है इन्स्पेक्टर साहब!"

इन्स्पेक्टर ने झट डाक्टर के हथकड़ी भर दी। डाक्टर ने उनकी ओर घूरकर कहा—"यह भयानक चक्र रचा गया है। पुलीस और हंसराज सत्यान्वेषी ने मिलकर मेरे ऊपर यह चक्र रचा है। लेकिन कुछ परवा नहीं, मैं देख लूँगा। अदालत पर अदालत का खुला मैदान है। मुझे ख़र्च के लिए रुपये की कमी नहीं है।"

हंसराज ने कहा—"सो तो बनी बात है। कोकेन की इतनी बिक्री का रुपया जायगा कहाँ!"

मुँह बनाकर डाक्टर ने कहा—"मैं कोकेन बेचता हूँ, इसका प्रमाण?"

"बिना प्रमाण के तो हम लोग साँस भी नहीं लेते डाक्टर साहब! तुम्हारे शुगर ऑव मिल्क की शीशी में ही प्रमाण रक्खा हुआ है।"

साँप को ज़हरमोहरा छुला देने से जैसा होता है, डाक्टर भी इस बात को सुनते ही सुकड़कर सोंठ हो गया। उसके मुँह से बात नहीं

निकली। फुफकारते हुए साँड़ की तरह वह हंसराज की ओर देखने लगा। उसकी आँखों से चिनगारियाँ छूट रही थीं।

मैंने देखा तो अब वे सीधे सादे डाक्टर शुकदेव नहीं हैं। मानो एक दुर्दान्त नरघातक गुण्डा भलमनसाहत की ख़ोल छोड़कर बाहर निकल आया। इसी भयङ्कर नरघाती के साथ मैं इतने दिनों से मित्र भाव से बिता रहा हूँ, विचार कर मेरा कलेजा दहल उठा।

हंसराज ने पूछा --"कौन दवा तुमने हम दोनों को दी थी डाक्टर ठीक बोलो तो? क्या मरफिया की बुकनी थी? बोलो! बोलो! नहीं बोलोगे? नहीं बोलोगे तो केमिकल एकज़ामिनर की आँख में धूल नहीं न डाल दोगे।"

अब आराम से खाट पर बैठकर हंसराज बोले --"अच्छा दारोग़ाजी, अब हमारी इत्तिला दर्ज कीजिए।"

फ़र्स्ट इनफ़ारमेशन लिख जाने पर डाक्टर के घर की तलाशी ली गई। उनके यहाँ से दो बड़े बोतलों में कोकेन बरामद हुआ। डाक्टर ने जो उस समय चुप्पी साधी, तो फिर उसका मुँह नहीं खुला। उसके बाद माल सहित थाना चालान करते-करते सबेरा हो गया। उनकी चालान करने के बाद हंसराज ने कहा—"यहाँ तो सब तीन-तेरह हो गया है। चलो मेरे डेरे पर, वहीं चाय-पानी करेंगे।"

गिरगाम वैकरोड में एक पँचमहले मकान के बड़े दरवाज़े पर पहुँचे तो वहाँ पीतल के तख़्ते पर लिखा था—

हंसराज— सत्यान्वेषी

हंसराज ने कहा—"आइए, पधारिए; ग़रीब का झोपड़ा पवित्र कीजिए।"

मैंने पूछा—"सत्यान्वेषी क्या?"

"वह मेरा पता परिचय है। डिटेक्टिव शब्द सुनने में अच्छा नहीं लगता। जासूस शब्द भी अब हलके दरजे का बाज़ारू होने से रुचिकर नहीं है। इसी से मैंने अपना नाम सत्यान्वेषी रक्खा है। अच्छा नहीं है?"

पूरा मकान हंसराज के ज़िम्मे है। कमरे ख़ूब साफ़-सुथरे हैं। मैंने पूछा—"आप अकेले इसमें रहते हैं?"

"हाँ! सङ्गी मेरा वही ग़रीबराम है।"

मैंने साँस छोड़कर पूछा—"बहुत बढ़िया मौक़े का मकान है। कितने दिन से यहाँ हैं?"

"कोई बरस भर हुआ होगा। केवल कुछ दिनों के लिए आप लोगों के मेस में जाकर डेरा कर लिया था।"

ग़रीबा ने झटपट स्टोव जलाकर चाय तैयार कर ली। हम लोगों को प्यालों में दे दी। छोटे चम्मच से चाय चूसते हुए हंसराज ने कहा—"यार तुम्हारे मेस में तो कई दिन बड़े मज़े में बीते। लेकिन डाक्टर ने अन्त में मुझे पकड़ लिया था। इसमें मेरा ही अपराध था।"

मैं—कैसा अपराध? मेरी समझ में नहीं आया।

"पुलीस से जब मैंने जँगले की बात कही तभी मैं पकड़ गया। समझते हो न उसी जँगले से पाँड़ेजी—"

"नहीं, मैं यह पहेली नहीं समझता। शुरू से सब कहिए।"

एक बार और चाय चूसकर हंसराज ने कहा—"अच्छा मैं कहता हूँ। कुछ तो रात को सुन ही चुके थे। अब बाक़ी भी सुन लो। तुम लोगों के महल्ले में जो हर महीने ख़ून होता आता था, उसके मारे पुलीस के अफ़सर बहुत तङ्ग हो गये थे। एक ओर तो ख़ुद बम्बई सरकार और ऊपर से ये अख़बारवाले पुलिस को ताने-तिश्ने देकर नाको दम कर रहे थे। तब मैं लाचार एक दिन पुलीस के बड़े साहब से मिला। उनसे मैंने कह दिया कि मैं ग़ैर सरकारी शौकिया डिटेक्टिव हूँ। मुझे विश्वास है कि इन ख़ून ख़राबियों का पता लगा सकूँगा।

"बहुत बातचीत होने के बाद पुलीस-कमिश्नर ने मुझे हुक्म दिया। लेकिन इतनी प्रतिज्ञा हुई कि उनके और मेरे सिवा इसकी ख़बर किसी को न हो। उसके बाद मैं तुम्हारे मेस में पहुँचा। जहाँ कोई महल्ला वारदात पर वारदात होते रहने के लिए बदनाम हो वहाँ उसकी कहीं न कहीं जड़ पास में होनी चाहिए। इसी भरोसे पर मैंने तुम लोगों का मेस चुन लिया था। मुझे कहाँ मालूम था कि विरोधी दलवालों की बुनियाद भी उसी मेस में है।

"डाक्टर को मैंने बहुत आगे बढ़ा हुआ भलामानस तो समझा था। और यह भी मन में बात बैठी हुई थी कि कोकेन का रोज़गार चलाने के लिए होमियोपैथी डाक्टर बनकर बैठने से बहुत सुभीता होता है। डाक्टर के ऊपर सन्देह मुझे हुआ पाँड़े के मरने से एक दिन पहले। तुमको याद होगा एक दिन सबेरे सड़क पर भाटिया की लाश मिली थी। जब डाक्टर ने सुना कि उसकी कमर से एक हज़ार के

नोट मिले हैं तभी उसके चेहरे पर एक ऐसा व्यर्थ लोभ फूट पड़ा कि मेरा सब सन्देह उसी पर वज्रवत् जा घहराया।

"उसके बाद सन्ध्या को जब पाँड़े के दरवाज़े पर लुककर बातें सुनने की घटना हुई। वे आये थे हम लोगों की बातें सुनने नहीं। उनका मतलब था डाक्टर से बात करने का लेकिन एक मामूली बहाना बनाकर चले गये।

"पाँड़ेजी के व्यवहार से मुझे एक बार धोखा हुआ। मैंने समझा कि वे पाँड़े ही असल असामी हैं। फ़र्श पर कान देकर सुनने पर भी मामला साफ़ नहीं हुआ; लेकिन इतना मेरी समझ में आ गया कि उन्होंने कुछ भयङ्कर दृश्य देखा है और वही गुप्त बात डाक्टर से कहने गये थे।

"अब तो मामला बिलकुल साफ़ हो गया। डाक्टर कोकेन का रोज़गार करता था। लेकिन किसी को इसका भेद जानने नहीं देता था कि वह उस कोकेन के रोज़गार का सरदार है। अगर किसी को ये बातें किसी तरह मालूम हो जातीं तो उसको जान से मार डालता था। इसी तरह वह इतने दिनों तक अपने को बचाता आया है।

"वह भाटिया, जहाँ तक मैं समझता हूँ, डाक्टर का दलाल था। उसी के द्वारा कोकेन बाज़ार में दिया जाता था। हो सकता है कि मेरा यह अनुमान ठीक न भी हो। उस रात को वह डाक्टर के पास आया था और किसी कारण से दोनों में अनबन हुई। हो सकता है कि डाक्टर को वह धमकाकर कुछ वसूल करना चाहता हो। इसी वास्ते उसने पुलीस का डर दिखलाया हो। उसके बाद ज्योंही वह

घर से बाहर हुआ, डाक्टर उसके पीछे-पीछे गया और भाटिया को ख़तम कर डाला। पाँड़े ने अपने जँगले से सड़क पर की यह घटना देखी और नासमझी के मारे डाक्टर से कहने गये। लेकिन उनका मतलब क्या था, यह तो मैं नहीं जानता। वे डाक्टर के उपकृत थे। उनको सावधान करने गये हों तो भी आश्चर्य नहीं। लेकिन होम करते हाथ जलता है। परिणाम उलटा हुआ। डाक्टर ने देखा कि अब पाँड़े को जीते रहने का अधिकार नहीं रहा। उसी रात को जब बाहर पेशाब करने आये होंगे, डाक्टर यमदूत की तरह उनके सामने आ खड़ा हुआ।

"मेरे ऊपर डाक्टर का सन्देह हुआ या नहीं सो तो मैं नहीं जानता लेकिन जब मैंने पुलीस को यह कहा कि यह सड़क की ओर का जँगला ही पाँड़ेजी की मौत का कारण है तब उसने ज़रूर समझा कि मैं कुछ अन्दाज़ा करता हूँ। इस कारण मुझे भी यमलोक जाने का ख़ासा अधिकार मिल गया। लेकिन मेरे भीतर स्वर्ग जाने के लिए बिलकुल उद्वेग नहीं था, इसी कारण मैं बड़ी सावधानी से इस लोक की यात्रा क़दम क़दम पर ख़बरदारी से करने लगा।

"उसके बाद ही पुलीस ने एक बौड़मपने का काम कर डाला कि मुझे गिरफ़्तार कर ले गई। अन्त को कमिश्नर साहब ने आकर मुझे छुड़ाया। मैं फिर मेस को लौट आया। डाक्टर को इतना समझते देर नहीं लगी कि मैं जासूस हूँ, लेकिन उसने मन का भाव छिपाकर मुझे रात को मेस में रहने देने की उदारता दिखलाई। फिर भी इस उदारता की आड़ में उसकी दुरभिसन्धि यह थी कि मुझे किसी तरह

ख़तम कर डालना। क्योंकि उसकी बातें मैं बहुत कुछ जान गया जिससे उसके ऊपर ख़तरे की नंगी तलवार कच्चे धागे में लटकने लगी।

"डाक्टर के विरुद्ध सची बात तो यह कि कोई प्रमाण मेरे पास नहीं था। यह बात सही है कि उसके घर से कोकेन बरामद करके उसको माल सहित चालान कर दिया जा सकता था। लेकिन वह बेदर्द क़साई ख़ूनी है, इसका किसी अदालत में साबित करना कठिन ही नहीं असम्भव था। इसी कारण मैंने भी उसको लोभ देना शुरू किया। ताले में काँटा तोड़कर मैंने ही उसको ख़राब कर दिया था। जब डाक्टर ने सुना कि ताला बन्द नहीं हो सकता, तब उसके भीतर उत्साह का बवण्डर उठ आया कि अब हम लोग रात में दरवाज़ा बन्द करके नहीं सो सकेंगे।

"उसके बाद जब हम लोग दवा लेने उसके यहाँ गये तब तो उसके हाथ में चाँद मिल गया। उसने हम लोगों को एक-एक पुड़िया मरफ़िया पाउडर देकर समझ लिया कि हम लोग ख़ूब शान्ति से इस जगत् को छोड़ देंगे और किसी को कुछ भी मालूम नहीं होगा। उसके बाद तो ख़ुद बाघ आकर पिंजड़े में अपने आप फँस गया।"

× × × ×

मैंने कहा—"अच्छा अब मैं चलता हूँ भाई, तुम तो उधर जाओगे नहीं न?"

"नहीं, मैं क्यों जाऊँ। तुम मेस को जा रहे हो?"

मैं—हाँ! हाँ!

"किस वास्ते! क्या काम है?"

मैं—क्या काम है ? डेरे पर नहीं जाऊँगा ?

"मेरा कहना है कि उस मेस को छोड़ना ही होगा। इससे तो अच्छा था कि यहीं आ जाते ! यह डेरा भी तो ख़राब नहीं है।'

मैंने कुछ देर चुप रहकर कहा—"क्यों बदला दे रहे हो क्या ?"

हंसराज ने मेरे कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"तुमने लाचारी में अपने डेरे में मुझे जगह देकर अपना साथी बनाया था। उस ऋण से तो उऋण हो ही नहीं सकता भाई ! मैं देखता हूँ, तुम्हारे साथ रहे बिना मेरा मन ही नहीं मानेगा। यह बद अभ्यास थोड़े ही दिन तुम्हारे साथ रहने से हो गया है।"

मैं—सच कहते हो ?

"बिलकुल सच; इसमें ज़रा भी मीन-मेख नहीं यार !"

"अच्छा तो ठहरो ; मैं अपना सब बोरिया-बँधना उठाये लिये आता हूँ।"

प्रसन्न होकर हंसराज ने कहा—"साथ ही मेरा अङ्गड़-खङ्गड़ भी लेते आना न भूलना।"

१

हंसराज ने अख़बार पढ़कर बड़े यत्न से तहाकर टेबुल पर एक ओर रख दिया और आप कुर्सी पर पीठ देकर बैठे जँगले के बाहर देखने लगे।

बाहर कोहिरा और गर्द-ग़ुबार से पाक फागुन का प्रातःकालीन नभमण्डल बालसूर्य्य की मधुर किरणों से झलमला रहा था। मकान के चौथे महल पर कई कमरों में हम लोगों का डेरा था। बैठक के कमरे के जँगले से बाहर की ओर शहर का बहुत बड़ा भाग और आकश दिखलाई देता था। नवलक्खी नगरी बम्बई का नागरिक कल-रव आरम्भ हो गया। सदर सड़क से घोड़ागाड़ी, ट्रामवे और मोटरों का आना-जाना शान्ति-भङ्ग करके प्रातःकालीन चिड़ियों के चहचह-महमह में मिल रहा था। कौवों की तरह कबूतरों का झुण्ड मँड़राकर उठता और मुम्बादेवी की ओर दौड़ता जाता था। सबेरे की चाय और जलपान से निबटकर हम लोग अख़बारी दुनिया से बाहर की बातचीत में लगे थे। हंसराज ने जँगले से नज़र फेरकर कहा—"कुछ दिनों से अख़बारों में एक मज़ेदार विज्ञापन निकल रहा है देखते हो?"

मैंने कहा—"नहीं, मैं विज्ञापन नहीं पढ़ता।"

भवें तानकर हंसराज ने विस्मय प्रकट करते हुए कहा—"विज्ञापन नहीं पढ़ते तो पढ़ते क्या हो?"

"अख़बार में जो सब लोग पढ़ते हैं वही मैं भी पढ़ता हूँ। ख़बर का काग़ज़ है ख़बर पढ़ता हूँ।"

हं०—ख़बर पढ़ते हो! फ़हीम ने रहीम की सुन्दरी की नाक काट ली। कल्याण में एक अहीरिन को एक साथ तीन बच्चे पैदा हुए, नसरवानजी की गैया के दो बछड़े एक साथ जनमे हैं जिनमें से एक के तीन और दूसरे के एक ही कान है। इन ख़बरों को पढ़कर क्या लाभ उठाते हो? अगर असल ख़बर चाहते हो तो विज्ञापन पढ़ो।

हंसराज अद्भुत प्रकृति के आदमी हैं। लेकिन वह परिचय उनका क्रमशः प्रकट होता चलेगा। बाहर से उनको देखकर या कुछ उनसे बातें करके एक बार भी मन में नहीं होता कि उनमें कुछ असाधारणत्व है। लेकिन उनको खुदकाकर कुछ उत्तेजित कर देने पर उनके भीतर के जौहर कछुए के पाँव की तरह निकलने लगते हैं। वे स्वभावतः अल्पभाषी हैं, किन्तु व्यङ्ग विद्रूप करके एक बार उनको टिटकारी दे सकने से उनकी सान पर चढ़ी हुई झकाझक बुद्धि सङ्कोच और संयम का पर्दा फाड़कर बाहर हो पड़ती है। तब उनकी बातें सुनने और समझने सीखने योग्य हो जाती हैं। मैं उनको उत्तेजित करने का लोभ सँभाल नहीं सका। कहा—"यह बात है लेकिन अख़बारवाले होते हैं बड़े शैतान। पूरा अख़बार विज्ञापन से तो भरते नहीं, कुछ फ़ज़ूल ख़बरें छापकर कालम नष्ट करते हैं।"

अब तो हंसराज की नज़र तेज़ हो पड़ी। बोले—"इसमें उन बेचारों का कुछ दोष नहीं है। तुम्हारे ऐसे लोगों का मनोरंजन न कर सकें तो उनकी बिक्री कहाँ होगी! इसी से बाध्य होकर इन ख़बरों की

सृष्टि दरकार होती है। लेकिन असल में काम की ख़बर विज्ञापन में ही रहती है। देश में कहाँ क्या होता है, कौन किस उपाय से दिन-दहाड़े डाका डालता है, कौन चोरी का माल प्रचार करने के लिए नया फन्दा रचता है यह सब दरकारी ख़बर चाहो तो विज्ञापन पढ़ो। रय़ूटर के टेलीग्राम में वे चीज़ें कहाँ मिलेंगी!"

मैंने हँसकर कहा—"सो तो नहीं मिलतीं. लेकिन ख़ैर जाने दो; अब मैं विज्ञापन ही पढ़ा करूँगा, लेकिन तुम्हारा वह मज़ेदार विज्ञापन क्या है सो तो सुनूँ।"

हंसराज ने काग़ज़ मुझे देकर कहा—"देखो पढ़ लो। निशान मैंने लगा दिया है।" उलटते उलटते एक कोने में चार पंक्तियों का एक विज्ञापन देखा। लाल पेंसिल से निशान लगाया गया था, इसी से नज़र पड़ गई। नहीं तो खोजकर पाना कठिन होता, विज्ञापन का शीर्षक था—

"मार्ग का कण्टक"

"अगर कोई मार्ग का कण्टक दूर करना चाहे तो शनिवार सन्ध्या के साढ़े पाँच बजे हार्नबीरो के नाके पर गली के पहले ही जो रोशनी का खम्भा है. उस पर हाथ रखके खड़ा रहे।"

दो-तीन बार पढ़ चुकने पर भी उस विज्ञापन का सिर-पैर कुछ मेरी समझ में नहीं आया। मैंने चकित विस्मित होकर पूछा—"रोशनी के खम्भे पर हाथ रखके वहाँ मोड़ पर खड़े होने से मार्ग का

कण्टक दूर हो जायगा, इस विज्ञापन का अर्थ क्या हुआ और मार्ग का काँटा क्या चीज़ है !"

हंसराज ने कहा— 'अभी तक मैं पता नहीं लगा सका हूँ। विज्ञापन तीन महीने से हर शुक्रवार को छपता है। पुराने अङ्क देख लो, आप समझ जाओगे।"

मैंने पूछा—"लेकिन इस विज्ञापन का मतलब क्या है ? कोई विज्ञापन हो, कुछ मतलब से ही दिया जाता है। बिना उद्देश्य के तो कोई विज्ञापन देता नहीं। इसका तो कोई मतलब ही नहीं होता !"

हं०—हाँ, फिलहाल कोई उद्देश्य तो नहीं ज़ाहिर होता; लेकिन इतने से यह समझ लेना कि इसका कुछ मतलब या उद्देश्य हई नहीं है यह तो ठीक नहीं न होगा। बिना मतलब के कोई गाँठ का पैसा खर्च कर विज्ञापन देगा थोड़े ! लेकिन इसको पढ़ने से एक बात पहले ही सामने आती है।

मैं—वह क्या ?

"जो आदमी विज्ञापन दे रहा है वह अपने को छिपाना चाहता है। पहली बात तो यह कि विज्ञापन में किसी का नाम नहीं है। अनेक समय विज्ञापन में नाम नहीं रहता यह बात सही है; लेकिन अख़बार के आफ़िस में पता लगाने से सब ठिकाना मालूम हो जाता है। ऐसे विज्ञापन बक्स-नम्बर देकर निकाले जाते हैं। लेकिन इसमें वह सब कुछ नहीं है। इसके सिवा जो विज्ञापन देता है वह सर्वसाधारण के साथ कुछ कारबार चलाना चाहता है। इसमें भी वह बात मौजूद है। लेकिन मज़ा यह कि यह आदमी छिपे रहकर ही कारबार चलाना चाहता है।"

मैं—मेरी समझ में बात नहीं आई तुम्हारी !

हं०—अच्छा मैं समझा देता हूँ। जो यह विज्ञापन दे रहे हैं वे सर्वसाधारण से पुकारकर कहते हैं कि अगर तुम लोग रास्ते का काँटा दूर करना चाहो तो अमुक स्थान में अमुक समय खड़े रहो। और इस तरह खड़े रहो कि मैं तुमको पहचान सकूँ। रास्ते का काँटा क्या है, इस पर अभी बहस करने का कुछ काम नहीं है। अगर चाहते हो जानना तो उस मुक़ाम पर जाकर खड़े हो जाओ। मान लो कि तुम ठीक समय पर जाकर खड़े हुए। उसके बाद क्या हुआ !

मैं—क्या हुआ बतलाओ।

हं०—शनिवार शाम को साढ़े पाँच बजे वहाँ कैसा लोक-समागम होता है यह तुमको कहना नहीं पड़ेगा। एक ओर सफ़ेद क़िला, दूसरी ओर नाकेवाले थियेटरों का हुजूम, तुम वहीं आधा घण्टा खड़े हुए और आने-जानेवालों का धक्का खाते रहे। लेकिन जिस आशा से गये थे वह काम नहीं हुआ। कोई तुमको पथ का कण्टक दूर करने की दवा लेकर नहीं आया। तुम लाचार राह देखकर चले आये। मन में समझ लिया कि सब सिर से पैर तक धोखा ही धोखा है। उसके बाद तुमने जेब में हाथ डाला तो देखा एक चिट्ठी है। नहीं मालूम कौन भीड़ में तुम्हारे जेब के हवाले कर गया है।

मैं—तब फिर।

"तब फिर क्या। चोर से भेंट भी नहीं हुई और सेंध देने की तैयारी का बन्दोबस्त हो गया। विज्ञापन देनेवाले से तुम्हारे साथ

लेन-देन का सम्बन्ध जुट गया और वह कौन है, कैसा चेहरा है, सो तुमको कुछ भी मालूम नहीं हुआ।"

मैंने कुछ देर चुप रहकर पूछा—"अगर तुम्हारी युक्ति को सच मान लें तो इससे क्या साबित हुआ?"

"यही साबित हुआ कि मार्ग-कण्टक के सौदागर अपने को गुप्त रखना चाहते हैं और जो अपना परिचय देने में इतने संकुचित हैं, वे विनयी, नम्र हो सकते हैं लेकिन भलेमानस नहीं हैं।"

मैं—यह तुम्हारी अटकलबाज़ी है, इसको प्रमाण नहीं कह सकते।

अब हंसराज ने कमरे में उठकर टहलते हुए कहा—"अरे यार अनुमान ही तो असल प्रमाण है। जिसको तुम लोग असल प्रमाण कहा करते हो उसका विश्लेषण करने पर बहुत सा अनुमान के सिवा और है क्या! क़ानून में जो सरकम्स्टेंशियल एविडेंस (Circumstancial evidence) के नाम से एक प्रमाण है, वह है क्या! वह अनुमान के सिवा और तो कुछ नहीं है। और उसी के बल पर कितने ही आदमियों के ज़िन्दगी भर गुलछर्रें उड़ते रहते हैं।"

मैं चुप रह गया। हृदय से सहमत नहीं हो सका। अनुमान प्रत्यक्ष प्रमाण के समान हो सकता है, यह बात सहज ही नहीं मान ली जा सकती। लेकिन हंसराज की युक्ति का खण्डन करना भी बड़ा कठिन काम है। इस कारण चुप रहना ही ठीक जँचा। यह मैं जानता था कि इस चुप्पी से वे और उत्तेजित होकर और ज़ोरदार सुबूत ला देंगे।

एक गौरैया चिड़िया आकर खुले जँगले पर मुँह में तिनका लिये आकर बैठ गई और अपनी उज्ज्वल आँखें फिरा घुमाकर हम लोगों

को देखने लगी। हंसराज ने कहा—"अच्छा बतलाओ, यह चिड़िया क्या चाहती है।"

मैंने कहा—"क्या चाहती है। मैं तो समझता हूँ घोंसला बनाने की जगह तजवीज कर रही है।"

"ठीक बात है। इसमें कुछ सन्देह तो नहीं है न ?"

मैं—कुछ सन्देह नहीं है।

अब दोनों हाथ पीछे रखकर मुसकुराते हुए हंसराज ने कहा—"कैसे तुमने समझा ! इसका सुबूत क्या है ?"

"प्रमाण और क्या चाहिए ! उसके मुँह में तिनका जो है।"

हं०—तिनका होने से ही साबित होता है कि घोंसला बनाना चाहती है ?

मैंने देखा कि हंसराज के पेंच में अब आ पड़ा हूँ। कहा—"नहीं तो दूसरा क्या है ?"

हं०—अनुमान है ! अनुमान ! अब रास्ते पर आ गये। इतनी देर तक भटकते रहे हो !

मैं—भटकने की बात नहीं, लेकिन तुम क्या कहना चाहते हो कि इस चिड़िया की बात ही आदमी पर भी चलेगी ?

हं०—क्यों नहीं चलेगी ?

मैं—तुम अगर तिनका मुँह में लेकर एक आदमी के जँगले पर बैठ रहो तो इससे यह साबित होगा कि तुम घर बनाना चाहते हो ?

हं०—नहीं, उससे यह साबित होगा कि मैं एक वज्र पागल हूँ।

मैं—इसके लिए प्रमाण की आवश्यकता है ?

हंसराज हँसने लगे। बोले—"तुम मुझे चिढ़ा नहीं सकोगे, लेकिन तुमको बात माननी ही पड़गी। प्रत्यक्ष प्रमाण पर अविश्वास किया जा सकता है लेकिन युक्तिसङ्गत अनुमान एकदम अमोघ है। उसमें भूल होने की जगह नहीं है।"

मुझे भी ज़िद आ गई थी। कहा—"लेकिन इस विज्ञापन के विषय में जो तुमने इतना उद्भट अनुमान किया, उस पर मैं विश्वास नहीं कर सकता।"

हं०—यह तुम्हारे मन की कमज़ोरी है। विश्वास करने की क्षमता चाहिए। ख़ैर, जो हो. तुम्हारे ऐसे आदमी के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण ही चाहिए। कल शाम को कुछ काम भी नहीं है। मैं तुम्हें विश्वास करा दूँगा।

मैं—कैसे?

इसी समय सीढ़ी पर किसी के पाँव की आहट मिली। हंसराज ने ध्यान से सुना। कहा—"कोई बेजान-पहचान का आदमी आ रहा है। हट्टा-कट्टा तैयार बदन है। हाथ में लाठी है. यह कौन है? ज़रूर हम लोगों से मिलने आया है। क्योंकि इस महल में हम लोगों के सिवा और कोई नहीं रहता।" इतना कहकर हंसराज ने मुसकुरा दिया।

बाहर से कड़ा खड़खड़ाया गया। हंसराज ने कहा—"आइए; भीतर आइए। दरवाज़ा खुला है।" किवाड़ खोलकर एक अधेड़ मोटे तैयार भलेमानस भीतर आये। उनके हाथ में मोटा, मलाका-बेंत का, चाँदी की मूँठ लगा, डंडा था। गले में काले अलपाका का

गुलूबन्द, किनारीदार धोती पहने, गौरवर्ण, सुन्दर मुखमण्डल, दाढ़ी-मूँछ सफ़ाचट। सामने माथे पर खल्वाट है। तीसरे महल की सीढ़ी चढ़ते हुए हाँफने लगे थे। इसी कारण भीतर आने पर विश्राम करने लगे। जेब से उन्होंने रूमाल निकाला और उसी से मुँह पोंछने लगे।

हंसराज ने मुझे सुनाकर कहा—"अनुमान है। अनुमान।"

मैंने चुपचाप उनका यह ताना हज़म कर लिया। क्योंकि यहाँ उस आगत मनुष्य का चेहरा उनके अनुमान से राई-रत्ती मिल गया।

उन्होंने विश्राम कर लेने पर पूछा—"जासूस हंसराज जी किसका नाम है?"

माथे पर का पंखा स्विच उठाकर खोलते हुए एक कुर्सी दिखा कर हंसराज ने कहा—"बैठिए! मेरा ही नाम हंसराज है, लेकिन यह जासूस नाम मुझे पसन्द नहीं है। मैं एक सत्यान्वेषी हूँ। ख़ैर, मैं देखता हूँ कि आप बड़े सङ्कट में पड़े हैं। ज़रा बैठकर ठंढा हो लीजिए। तब मैं आपके ग्रामोफोन की सूई का भेद सुनूँगा।"

आगत सज्जन अकचकाकर हंसराज का मुँह ताकते हुए कुर्सी पर बैठ गये। मेरे विस्मय का भी ठिकाना नहीं रहा। इस प्रौढ़ सज्जन को देखते ही ग्रामोफोन की सूई का रहस्य उसके साथ कैसे लगाया जा सकता है, यह मेरे मग़ज़ में बिलकुल नहीं आया। हंसराज की अद्भुत क्षमता के उदाहरण मैं बहुत पा चुका हूँ लेकिन यह काम मुझे महान् आश्चर्य-सागर में दबोर देनेवाला हुआ।

उस भलेमानस ने बड़ी कठिनता से अपने भीतर की उत्सुकता दबाकर कहा—"आपने—आपने कैसे जान लिया?"

हँसकर हंसराज बाबू कहने लगे—"सब अटकल की बातें हैं। देखिए पहले तो आप प्रौढ़ हैं, दूसरे आप सङ्गतिपन्न हैं। इस समय आप सङ्कट में पड़ गये हैं और अन्तिम बात यह कि मेरी सहायता लेने आये हैं।"

फिर उस बात को अधूरा छोड़कर हंसराज ने हाथ हिलाकर इशारे से समझाकर बतला दिया कि इतना सब समझने पर आपके आगमन का कारण समझ लेना एक बच्चे को भी सुगम हो जायगा।

यहाँ यह बतला देना ठीक होगा कि कुछ दिन हुए, इस बम्बई नगर में एक अद्भुत रहस्यमय घटना हुई थी और उसके "ग्रामोफोन पिन रहस्य" नाम से शहर और बाहर के सब अख़बारों में बड़ी हलचल मच गई थी। इसी कारण बम्बई के सब लोगों में बड़ा आतङ्क और बड़ी उत्तेजना फैली हुई थी। अख़बारों की रहस्यमय ख़बर पढ़कर उन दिनों चाय की दूकानों में, हलवाई के बेञ्च पर, नाटकघरों के क्लासों में सर्वत्र उसी की चर्चा और आलोचना हो रही थी। घर से बाहर होते ही सब लोगों के रोएँ खड़े हो जाते थे।

वह घटना यों है कि दो-ढाई महीने की बात है, मारवाड़ी बाज़ार के रामकिशन सेठ अब्दुलरहमान स्ट्रीट से होकर पैदल जा रहे थे। रास्ता तय करके ज्योंही बड़ी सड़क की पटरी पर चढ़ते हैं कि उसी दम मुँह के बल गिर पड़े। सबेरे का समय था। आने-जानेवालों का ताँता लगा था। सब ने उनको टेकाकर एक ओर किया तो देखा कि उनकी देह में प्राण नहीं है। सब लोग इसकी जाँच करने लगे कि इस तरह राह चलते ऐसा क्या हो गया कि चटपट उनके देह-पञ्जर से

प्राण-पखेरू उड़ गया। देखा गया तो उनकी छाती पर एक बूँद रक्त जमा है, उसके सिवाय शरीर भर में कहीं किसी तरह चोट का कुछ निशान नहीं है।

पुलीस ने लाश देखकर आकस्मिक मृत्यु समझा और जाँच के वास्ते अस्पताल भेज दिया। वहाँ डाक्टर ने लाश की पूरी जाँच करके एक अद्भुत रिपोर्ट दी। उन्होंने लिखा कि सेठजी के भीतर दिल में ग्रामोफोन का एक पिन धँस गया, इसी से मृत्यु हुई है। कैसे यह पिन वहाँ हृदय में जाकर बिंध गया उसका ब्यौरा विशेषज्ञ अस्त्र-चिकित्सक ने लिखा कि बन्दूक़ या इसी तरह के किसी इंजेक्टर यंत्र द्वारा फेंका हुआ वह पिन उस आदमी के सामने से छाती का चमड़ा और मांस भेदकर मर्मस्थान पर जा लगा है, उसके साथ ही मौत हो गई है।

इस घटना के कारण समाचारपत्रों में बड़ा आन्दोलन उठा। साथ ही मरे हुए की एक संक्षिप्त जीवनी भी प्रकाशित हुई। यह ख़ून है या नहीं, अगर है तो किस तरह, यह ख़ून कैसे हुआ, इस विषय पर बहुतेरी गवेषणाएँ छपीं। लेकिन यह बात कोई नहीं साफ़ बतला सका कि इस ख़ून का मतलब क्या है। और जिसने ख़ून किया है उसको क्या मिला है अर्थात् उसको क्या लाभ हुआ। यह भी अख़बार में छपा कि सरकार की ओर से इसकी तहकीकात के लिए ख़ास पुलीस तैनात हुई है। चाय की दूकान के क़ाज़ियों ने फ़तवा दिया कि यह कुछ बात नहीं है। इस आदमी का हार्टफ़ेल हो गया है। नाहक़ अख़बारों ने अच्छी ख़बरों के अभाव में इसी को सरसों का पहाड़ बनाकर कालम काले किये हैं।

इसके दस दिन बाद शहर के सब अख़बारों में दो इञ्च बड़े टाइप में जो ख़बर निकली उससे शहर के प्रायः सब निवासी जोश में खड़े हो गये। चाय के दूकान-मालिकों की आंखें तीसरा शिवनेत्र होकर खुल गईं। चारों ओर से अफ़वाहों का तांता इतना लगा कि बरसाती मेंढकों की उपज भी मात खा गई।

दैनिक वर्त्तमान में छपा :—

फिर ग्रामोफोन पिन

रोयें खड़े करनेवाले अद्भुत रहस्य

बम्बई की राह, हाट-बाट, घाट में सर्वत्र ख़तरा।

पाठकों को याद होगा कि कई दिन हुए रामकिशन मारवाड़ी रास्ता चलते-चलते सदर सड़क पर गिरकर मर गये थे। उनकी छाती के भीतर हृदय में से एक ग्रामोफोन पिन बरामद हुआ। डाक्टर ने उसी को मृत्यु का कारण बतलाया। हम लोगों को उसी समय सन्देह हुआ था कि यह साधारण घटना नहीं है। इसमें ज़रूर एक भीषण षड्यंत्र छिपा हुआ है। हम लोगों का वह सन्देह आज सत्य में परिणत हो गया है। कल वैसी ही एक और रोमाञ्चकर घटना हो गई है। बम्बई के प्रधान व्यापारी लक्ष्मीदास रामजी फ़र्म के मालिक युगलकिशोर अपनी मोटर पर साढ़े पाँच बजे सन्ध्या के चौपाटी की ओर सैर करने गये थे। रेलवे-लाइन का फाटक बन्द पड़ा है, देखकर वहीं मोटर छोड़ पैदल टहलने के लिए उतरे। लाइन पार करके ज्योंही समुद्र की ओर बढ़ते हैं कि "ओह"

करके वहीं धरती में धड़ाम से गिर गये। उनका शोफ़र और आदमियों के साथ दौड़कर उन्हें उठाने और गाड़ी में सवार कराने चला तो उनका प्राण निकल गया देखा। इस आकस्मिक दुर्घटना से सबके विस्मय की सीमा न रही। सब दाँतों उँगली दबा रहे थे कि पुलीस मौक़े पर पहुँच गई। सेठजी की देह में सिल्क का पञ्जाबी कुर्त्ता था। पुलीस ने देखा कि उनकी छाती पर एक बूँद रक्त जमा है।

अपघात मृत्यु समझकर तुरत लाश डाक्टरी जाँच के लिए भेज दी गई। पोस्टमार्टम के बाद डाक्टरी रिपोर्ट से मालूम हुआ कि उसके हृदय पर एक पिन छिदा हुआ मिला है, जो सामने से छाती छेदकर भीतर घुसा था, उसी से मृत्यु हुई है।

साफ़ जाना जाता है कि यह कोई आकस्मिक दुर्घटना नहीं, कोई निष्ठुरहृदय हत्यारा शहर में आ पहुँचा है। वह या उसके दल-वाले कौन हैं, किस मतलब से चुन-चुन करके भले आदमियों का ख़ून कर रहे हैं इसका अनुमान करना बड़ा कठिन है। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि ये लोग किस तरह किस औज़ार से ख़ून करते हैं इसका कुछ भी भेद नहीं मिलता।

मृत मारवाड़ी महाशय बड़े हट्टे-कट्टे पुष्ट जवान थे। उनके साथ किसी की शत्रुता भी नहीं मालूम हुई। उम्र उनकी इस समय पचास के आस-पास थी। उनके कोई लड़का नहीं था। उनकी इकलौती लड़की ही उनकी जायदाद की मालकिन है। बेचारे की आकस्मिक मृत्यु से हम लोग दुखी हैं और उनकी कन्या और दामाद से समवेदना प्रकट करते हैं।

पुलीस की तहक़ीक़ात ज़ोर शोर से जारी है, विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है कि उनका सोफर सन्देह में पकड़ा गया है।

उसके बाद दो सप्ताह तक अख़बारों में इस विषय पर बड़ी धूम-धाम से लेख निकलते रहे। पुलीस की तहक़ीक़ात भी ख़ूब सरगर्मी से होती रही। अफ़सरों को पसीने-पसीने होना पड़ा, लेकिन अपराधी का पकड़ा जाना तो दूर, ग्रामोफोन की सूई का भी कुछ पता नहीं चला। मामला अँधेरे का अँधेरे में ही रह गया, कहीं रोशनी की रेखा भी नहीं दिखाई दी।

दो सप्ताह पूरे नहीं हुए थे कि फिर ग्रामोफोन की सूई दिखाई दी। इस बार सर्राफों के सर्दार का शिकार हुआ। नाम था गागरमल। नलबाज़ार का नाका पार करते हुए वे अकस्मात् धरती पर गिर गये, फिर उठ नहीं सके। फिर अख़बारों में आन्दोलन का ज्वार आ गया। पुलीस की अकर्मण्यता के विषय में टीका-टिप्पणी की बड़ी बाढ़ आ गई। बम्बईवालों की छाती पर भूत-पिशाच की विभीषिका सवार हो गई। रईसों की बैठक से लेकर साधारण दूकानदारों तक में इसकी चर्चा के मारे और सबकी आलोचना को स्थान ही नहीं रह गया।

इसके बाद ऐसी ही दो और घटनाएँ हुईं। शहर भर में भयङ्कर आतङ्क छा गया। कब किसके प्राण चलते-चलते निकल जायँगे, कुछ ठिकाना नहीं रहा। कैसे जान बचेगी, इसका उपाय किसी को नहीं सूझा।

हंसराज को इस विषय में बड़ी चिन्ता हुई। चोरों, बदमाशों और ख़ूनियों को पकड़ना ही उनका पेशा है। इस विषय में उन्होंने

नाम भी काफ़ी कमाया है। डिटेक्टिव उर्फ़ जासूस शब्द से उनको चाहे जितनी विरक्ति हो, लेकिन सचमुच वे एक बेसरकारी जासूस के सिवा और कुछ नहीं हैं, यह वे मन में अच्छी तरह समझते हैं। इसी कारण इस हत्याकाण्ड से उनकी मानसिक शक्ति बहुत उत्तेजित हो उठी थी। हम लोग दोनों आदमी जगह-जगह घूमकर बदमाशों के भिन्न-भिन्न अड्डे देख भी आये। इस देख-भाल में हंसराज को कुछ ज्ञान या अनुभव हुआ या नहीं सो तो मालूम नहीं है। अगर उनको कुछ मालूम हुआ हो तब भी उन्होंने मुझसे कुछ कहा नहीं। लेकिन ग्रामोफोन की सुई की जाँच में जहाँ जो कुछ ख़बर पाते उसको तुरत नोटबुक में लिख लेते थे। जान पड़ता है, उनको भरोसा हो गया था कि एक दिन इस रहस्य के सब बिखरे हुए सूत उनके हाथ में आ पड़ेंगे।

इसी कारण आज जब सचमुच सूत उनके हाथ में आ पड़ा तब देखा तो बाहर शान्त भाव धारण करने पर भी भीतर ही भीतर वे बड़े उत्तेजित हो रहे हैं।

वे आगत सज्जन बोले—"आपका नाम सुनकर मैं आया हूँ। लेकिन ख़ुशी है कि मुझे सफलता के चिह्न मिल रहे हैं। आपने आते ही जो आश्चर्यजनक क्षमता दिखलाई है, इससे मुझे भरोसा हो गया है कि आप मुझे इस सङ्कट से उबार देंगे। पुलीस-वालों से कुछ होगा नहीं। मैं तो उनके यहाँ गया ही नहीं। देखते तो हैं पाँच-पाँच ख़ून हो गये, पुलीस कुछ कर नहीं सकी। मैं भी तो बिदा ही हो चुका था। ज़रा और आगे हो—"

इतना कहते कहते उनकी बोलती बन्द हो गई। ललाट पर पसीने की बूँदें चुचुआने लगीं। हंसराज ने उनको प्रबोध देकर कहा—"आप घबराइए नहीं। पुलीस के पास न जाकर जो हमारे पास आये हैं यह आपने अच्छा ही किया है। इस भयङ्कर मामले का निबटेरा कोई कर सकता है तो वह पुलीस नहीं है। आप शुरू से सब मुझे बतलाइए। छोटी-मोटी या बेज़रूरत की समझकर कोई बात मत छोड़िएगा। मेरे लिए कोई भी बेज़रूरी नहीं है।"

अब वे सज्जन भरोसा पाकर सन्तुष्ट हुए और शान्त भाव से कहने लगे—"नाम मेरा सन्तोषकुमार है। मैं मल्हार बावड़ी पर रहता हूँ। अट्ठारह बरस की उम्र से मैं वाणिज्य-व्यापार में सर्वत्र घूमता हूँ। ब्याह करने की फ़ुरसत भी मुझको नहीं मिली। मैं लड़के-बच्चों से भी बहुत नफ़रत करता हूँ। ब्याह करने की इच्छा भी मेरी नहीं है। मैं अकेला रहना ही पसन्द करता हूँ। मेरी उम्र भी कम नहीं है। अब की फागुन पूर्णिमा को बावन बरस का हो जाऊँगा। दो बरस हुए, मैं काम-काज से अलग होकर रहता हूँ। सारी ज़िन्दगी की कमाई कोई डेढ़ लाख रुपया मैंने बैङ्क में जमा कर दिया है। उसी के सूद से मेरा गुज़ारा अच्छी तरह हो रहा है। घर का भाड़ा भी नहीं देना पड़ता। घर अपना है। थोड़ा गाने-बजाने का शौक़ है। इसी की धुन में ज़िन्दगी सुख से बिता रहा था—"

हंसराज ने पूछा—"ज़रूर; लेकिन कोई पालने को है?"

सन्तोषकुमार ने कहा—"नहीं। अपना मेरा कोई नाते का भी नहीं है, इस कारण उस झंझट में भी नहीं पड़ता। एक दूर नाते का

भतीजा है। वही कभी-कभी रुपये के वास्ते तङ्ग करने आया करता है। लेकिन वह लौंडा ऐसा बेकदा, जुआड़ी और पियक्कड़ है कि मैं उसकी शक़्लत बरदाश्त नहीं करता, इसी कारण घर में आने नहीं देता।"

हं०— वह भतीजा कहाँ रहता है ?

सन्तोषकुमार ने कहा—"इस घड़ी तो वह बे किराये के घर में है। रास्ते में पियक्कड़पना और पुलीस से मार-पीट करने के क़ुसूर में दो महीने को जेल का मेहमान हुआ है।"

हं०—अच्छा आगे कह चलिए।

"उस गुणवन्त भतीजे का नाम ख़ुशहाल है। उसके जेल चले जाने पर मैं शान्ति से चला जा रहा था। कुछ चिन्ता-फ़िक्र नहीं। हित-मित्र तो कोई था नहीं। लेकिन जानने में मैंने कभी किसी का कुछ बिगाड़ा या अनिष्ट नहीं किया। इस कारण मैं यह भी नहीं जानता कि कोई मेरा शत्रु है लेकिन कल बिना बादल के मेरे ऊपर बिजली गिरी। मुझे सपने में भी भरोसा नहीं था कि ऐसी घटना होगी। ग्रामोफोन पिन की बात अख़बारों में पढ़ी तो थी ज़रूर; लेकिन उस पर मेरा विश्वास नहीं होता था। मैं उसको चंडूख़ाने की गप समझता था लेकिन वे मेरे सब ख़यालात अब छूमन्तर हो गये हैं।

"कल सन्ध्या को मैं सदा की भाँति घूमने निकला था। ग्रेपटरोड की ओर घूमने जाया करता हूँ। चरनी रोड के मोड़ पर गाना-बजाना था। वहाँ सन्ध्या बिताकर नौ साढ़े नौ बजे घर लौटा। पैदल ही जाता हूँ। इस उम्र में पैदल चलने से शरीर अच्छा रहता है, भूख लगती है। जब मैं घूम-घामकर लौटा, क्राफर्ड मार्केट की ऊँची घड़ी

में सवा नौ बज गया था। रास्ते में गाड़ी-मोटर की बड़ी भीड़ थी। मैं पटरी पर कुछ देर खड़ा रहा। दो ट्रामगाड़ियाँ पास हो गईं। मौक़ा देखकर सड़क पार करने दौड़ा। जब बीच सड़क पर पहुँचा तब छाती पर एक बड़ा धक्का लगा। साथ ही छाती में कील गड़ने की सी तकलीफ़ हुई। किसी ने छाती पर घूँसा मारा लेकिन बड़ी कठिनता से मैं सम्हलकर गिरते-गिरते बचा और बग्घी, टमटम बचाकर सामने के फ़ुटपाथ पर जा पहुँचा।

"सिर इतना चक्कर खा गया था कि समझ में नहीं आया कि कैसे धक्का लगा था। घड़ी निकालकर समय देखना चाहा लेकिन जेब से घड़ी निकलती ही नहीं। किसी कारण से अटक गई है, फिर भी सम्हालकर कपड़े हटाकर निकाला तो देखा उसका ग्लास चूर-चूर हो गया है और ग्रामोफ़ोन की एक सूई उसमें धँसकर मुँह बाहर किये हुए लगी है।"

अब हंसराज ने उनकी घड़ी देखी फिर कुछ देर तक उसको देखते रहने के पीछे बक्स में कर दिया और टेबुल पर रखकर सन्तोषकुमार से बोले—"अच्छा फिर ?"

अब सन्तोषकुमार बोले—"फिर तो मैं किस तरह घर लौटा यह मैं ही जानता हूँ या भगवान् जानते हैं किन्तु अब अफ़सोस के मारे रात भर मुझे नींद नहीं आई है। संयोग से छातीवाले पाकेट में घड़ी मौजूद थी, इसी से जान बच गई है नहीं तो अब तक मैं भी अस्पताल के टेबुल पर मुर्दा होकर पड़ा रहता।"

इतना कहकर सन्तोषकुमार काँप गये। बोले—"एक ही रात में मानों मेरी दश बरस उम्र क्षय हो गई है। मैं जान लेकर कहाँ

भागूं, कहाँ जाऊँ, यही सोचता रहा हूँ बाबू साहब! भिनसारा होते समय आपका नाम याद आया। सुना था कि आप जादू जानते हैं। इसी आशा से मैं बन्द गाड़ी में चढ़कर आया हूँ। पैदल आने का मुझे साहस नहीं हुआ। डर था कि क्या जानें कहीं—"

हंसराज उठ खड़े हुए और सन्तोषकुमार के कंधे पर हाथ रखकर बोले—'आप अब चिन्ता मत कीजिए। बेखटके रहिए। अब आपका कुछ नहीं होगा। अब आपको कुछ डर नहीं है। कल आपका बड़ा कुग्रह कट गया है। अब आप हमारी बात मानकर चलें तो आपकी जान पर अब कुछ भी सङ्कट नहीं आने का।"

सन्तोषकुमार हंसराज के दोनों हाथ धरकर बोले—"आप दया करके मेरी जान इस सङ्कट से बचा दीजिए। मैं आपको एक हज़ार रुपया इनाम दूँगा।"

हंसराज अपनी कुर्सी पर बैठकर मुसकुराते हुए कहने लगे—"यह अच्छी बात है। सब मिलाके तीन हज़ार हो जायगा। गवर्नमेंट की ओर से भी दो हज़ार इनाम का इश्तिहार निकला है। अच्छा वह बात पीछे होगी। मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दीजिए। आपको कल जिस समय धक्का लगा, उस समय आपको कुछ आवाज़ सुनाई दी थी?"

"कैसी आवाज़?"

हं०—जैसे मोटर का टायर फटने की सी आवाज़?

"नहीं तो।"

हं०—और किसी तरह की आवाज़?

"मुझे तो कुछ भी याद नहीं है।"

हं०—खूब याद करके कहिए।

कुछ देर चिन्ता करने के बाद बोले—"रास्ते में घोड़ा-गाड़ी, बग्घी, फिटन की गड़गड़ाहट जैसी होती है वैसी ही मुझे सुनाई देती रही। याद आता है कि जिस समय धक्का लगा उस समय साइकिल की घंटी की तरह टनटनाया था।"

हं०—कुछ अस्वाभाविक सुना था?

सं०—नहीं साहब!

कुछ देर चुप रहकर हंसराज ने फिर पूछा—"आपका ऐसा कोई दुश्मन है जो आपका ख़ून कर सकता है?"

सं०—नहीं साहब! मुझे तो ऐसा मालूम नहीं है।

हं०—आपने शादी तो की नहीं; न लड़के बच्चे हैं। वही भतीजा आपका वारिस है न?

कुछ इधर-उधर करके सन्तोष ने कहा—"नहीं।"

हं०—वसीयत कर दी है आपने?

"हाँ।"

हं०—किसके नाम जायदाद कर दी है?

सन्तोष के गौर बदन पर लाली चढ़ रही थी। कुछ देर चुप रहने के बाद लजाते हुए बोले—"आप मुझसे जो चाहें पूछें, लेकिन इस प्रश्न को छोड़कर। यह बात बिलकुल मेरी प्राइवेट है।"

इतना कहकर सन्तोषकुमार रुक गये। तेज़ नज़र से उनकी ओर देखकर हंसराज ने कहा—"अच्छा जाने दीजिए। आपका

वारिस चाहे जो हो, उसको यह मालूम है कि आपने उसको यह बख़्शा है ?"

सन्तोष०—नहीं, मेरे वकील और मेरे सिवा और किसी को मालूम नहीं है।

हं०—आपके वारिस से आपकी भेंट होती है ?

मुँह फेरकर सन्तोष ने कहा—"हाँ, होती है।"

हं०—आपके भतीजे को जेल गये कितने दिन हुए ?

मन में हिसाब करके सन्तोष ने कहा—"कोई तीन हफ़्ता हुआ होगा।"

अब हंसराज त्योरियाँ चढ़ाये वहीं कुछ देर तक बैठे रहे। अन्त को एक लम्बी साँस लेकर बोले—"अच्छा, तो आज आप अब जाइए। अपना पता और यह घड़ी रख जाइए। और कुछ दरकार होने से आपको ख़बर दूँगा।"

"लेकिन आपने मेरे वास्ते कुछ बन्दोबस्त नहीं किया। इधर कुछ हो जाय—"

हंसराज ने कहा—"आपके लिए बन्दोबस्त यही कि आप घर से बाहर न निकलें। जहाँ तक बन पड़े भीतर पड़े रहें।"

उनके चेहरे पर ज़र्दी दौड़ चली। वे बोले—"घर में तो मैं अकेले रहता हूँ। मगर—"

हं०—नहीं, आपको घर में कुछ ख़तरा नहीं है; लेकिन चाहें तो एक दरबान रख सकते हैं।

सन्तोष०—तो घर से एकदम बाहर निकलें ही नहीं ?

हं०—अगर बहुत ही ज़रूरत आ पड़े कि गये बिना बने ही नहीं तो आप फ़ुटपाथ पर चलें। लेकिन इतनी ख़बरदारी रखें कि रास्ते पर सदर सड़क पर न उतरें। अगर उतरेंगे तो मेरी ज़िम्मेदारी नहीं रहेगी।

सन्तोषकुमार के चले जाने पर हंसराज ने अपने ललाट का पसीना पोंछा। और चुपचाप बैठे सोचने लगे। उनको सोचने-विचारने को सूत कई मिल गये, इसमें सन्देह नहीं है; इसी कारण मैंने उनकी चिन्ता में विघ्न नहीं किया।

आधा घंटा चुप रहने पर उन्होंने मुझसे पूछा—'तुम सोचते हो कि मैंने सन्तोष को रास्ते पर निकलने से क्यों मना किया है और घर में उनको कुछ भी खटका नहीं है ऐसा क्यों कहा ?"

मैं तो उनकी बात सुनकर अकचका गया। कहा—"हाँ।"

हं० —तुमने इन मामलों में यह तो ख़याल ज़रूर किया होगा कि ये सब ख़ून रास्ते पर ही हुए हैं फ़ुटपाथ पर नहीं, न इधर-उधर बीच सड़क पर। इसका कुछ कारण विचारा है ?

मैं—ना, मैं तो नहीं समझता। क्या कारण है ?

हं०—इसके दो कारण हो सकते हैं। एक तो बीच रास्ते में पकड़ जाने का खटका कम है। दूसरा यह कि जिस औज़ार से ख़ून होता है उसका व्यवहार दूसरी जगह चल नहीं सकता।

मैंने उकताकर पूछा—"ऐसा कौन औज़ार हो सकता है ?"

हं०—यह तो जब इसका भेद मिलेगा तब साफ़ सामने आ जायगा।

मुझे एक बात सूझी थी। कहने लगा—"अच्छा, ऐसी कोई बन्दूक़ या पिस्तौल अगर कोई तैयार करे जिससे ग्रामोफोन की पिन छोड़ी जा सके।"

हंसराज ने प्रसन्न होकर कहा—"अक़ल तो तुमने ख़ूब लड़ाई, लेकिन इसमें दो बातें हैं। जो आदमी बन्दूक़ या पिस्तौल से ख़ून करने जायगा वह चुन-चुनकर रास्ते पर क्यों ख़ून करेगा? वह सुनसान जगह ढूँढ़ेगा। बन्दूक़ की तो बात क्या, पिस्तौल छूटने की आवाज़ भी रास्ते के कोलाहल से ढँकी नहीं रह सकती। इसके सिवा बारूद की महक है। शब्द से तो शब्द ढँका जा सकता है। गन्ध कैसे ढँकी जा सकेगी?"

मैं - अच्छा अगर एयर गन, हवाई बन्दूक़ हो!

हँसकर हंसराज बोले—"कांधे पर हवाई बन्दूक़ रखकर ख़ून करने जाना कल्पना की नवीनता है, लेकिन सुबुद्धि का परिचय नहीं। इसमें सोचने की बात यह है कि हथियार चाहे जो हो उसकी आवाज़ कैसे ढँकी जा सकती है!"

मैं - तुमने तो अभी कहा कि शब्द से शब्द ढँका जा सकता है।

अब आँखें फाड़कर देखते हुए हंसराज ने कहा—"अरे ठीक बात है भाई ठीक!"

मैंने चौंककर पूछा—"क्या ठीक!"

अब मानो हंसराज सोते से चौंककर उठे। बोले—"और कुछ नहीं। इस ग्रामोफोन पिन का भेद जितना ही विचारो उतना ही मन में आता है कि ये सब ख़ून एक ही सूत में पिरोये हुए हैं, यद्यपि वह सहसा नज़र में नहीं आता।"

मैं—वह कैसा ?

हंसराज उँगलियों पर गिनते हुए बोले—"पहली बात तो यह कि जिनका ख़ून हुआ है वे सब जवानी लाँघ चुके थे। सन्तोषकुमार भी, जो घड़ी के प्रसाद से बच गये हैं, प्रौढ़ावस्था में हैं। दूसरी बात यह कि वे सब लोग धनी आदमी थे। यह हो सकता है कि कोई अधिक धनी है, कोई कम। लेकिन ग़रीब कोई नहीं। तीसरी बात सब सदर सड़क पर हज़ारों के सामने मारे गये हैं। चौथी बात जो अच्छी तरह ध्यान देने की है वह यह कि सब निपुत्री हैं।"

मैं—तब तुम यह अटकल करते—

हं०—नहीं, अभी मैंने अटकल अनुमान कुछ नहीं किया है। यह सब हमारे अनुमान की बुनियाद है।

मैं—लेकिन इनके सहारे अपराधियों का पकड़ना—

बीच में बात काटकर हंसराज बोल उठे—"अपराधियों का नहीं विजय ! अपराधी का। अख़बारवाले ख़ूनियों का गरोह कहकर कितना ही चिल्लाया करें। गरोह में केवल एक ही आदमी हैं। हैं का अर्थ बहुवचन नहीं, आदरसूचक है। वही इस नरमेध यज्ञ के होता, ऋत्विक् और यजमान हैं। एक बात में यों समझो कि परब्रह्म की तरह यही एकमेवाद्वितीयम् हैं।"

मैंने सन्देह से पूछा—"यह बात कैसे कह सकते हो ? कुछ सबूत है ?"

"सबूत बहुत हैं। लेकिन इस समय एक ही बताना काफ़ी होगा। ऐसा अचूक निशाना पाँच आदमियों का नहीं हो सकता।

हर एक का पिन ठीक हृदय पर बेध गया है। कोई भी बाल बराबर ऊँचे-नीचे नहीं है। सन्तोषकुमार ही की बात ले लो। अगर घड़ी छाती पर नहीं रहती तो पिन कहाँ पहुँचता, बतलाओ तो। ऐसा अचूक शिकार क्या दस-पाँच आदमी कर सकते हैं ? यह अर्जुन के लक्ष्यभेद की तरह ठीक आँख पर तीर मारना है। द्रौपदी का स्वयंवर याद है न ? देख लो वह काम अकेले अर्जुन ने ही किया। महाभारत के युग में भी ऐसा निशाना एक के सिवा दूसरे से नहीं हो सका।" कहकर हंसराज वहाँ से उठ गये।

हम लोगों की इस बैठक के पास एक और कमरा था। वह हंसराज का अपना था। उसमें वे हमको भी सदा नहीं जाने देते थे। बात यह है कि वह कमरा उनकी लाइब्रेरी का था। सन्तोष की घड़ी लेकर उसी कमरे में जाते हुए हंसराज ने कहा—"अब खाने-पीने के बाद निश्चिन्त होकर इस पर विचार करेंगे। स्नान का समय हो गया है।"

२

तीसरे पहर हंसराज किस काम के वास्ते बाहर चले गये थे, यह तो मैं नहीं जानता। जब लौट आये तब सन्ध्या हो गई थी। मैं चाय-पानी तैयार करके देर से उनकी राह देख रहा था। उनके आते ही टेबुल पर चाय-सेट सजाकर नौकर चला गया। हम लोग चुपचाप चाय चूसने लगे। दोनों को साथ ही चाय पीने का अभ्यास हो गया था। इसके बिना रुचता नहीं था, न मन ही लगता था।

चाय-पानी के बाद आसन पर बैठे चुरुट का धुआँ खींचते हुए हंसराज ने पहले बात छेड़ी। बोले—"सन्तोषकुमार को देखकर तुम कैसा समझते हो?"

मैंने कुछ विस्मित होकर कहा—"क्यों, क्या बात है? हमको तो बहुत अच्छा आदमी मालूम देता है।"

हंसराज ने कहा—"और नैतिक चरित्र?"

मैंने कहा—"पियक्कड़ भतीजे पर इस तरह ये नाराज़ हैं कि नैतिक चरित्र के भी अच्छे जान पड़ते हैं। फिर अवस्था भी अधिक हो गई है। ब्याह नहीं किया है, जवानी में कुछ उच्छृङ्खलता की हो तो बात दूसरी है, लेकिन अब उन सब के लिए तो उम्र है नहीं।"

हंसराज मुसकराकर बोले—"इनकी उम्र चाहे हो गई हो लेकिन एक स्त्री है इनके। और जहाँ गाने-बजाने में समय बिताने जाते हैं, उस मजलिस-घर की मालकिन वही स्त्री है। लेकिन उस घर को स्त्री का कहना ठीक नहीं क्योंकि उस घर का भाड़ा सन्तोषकुमार ही दिया करते हैं। और जिसको गाने-बजाने की मजलिस कह रहे हैं उसको मजलिस कहना भी ठीक नहीं है; क्योंकि दो प्राणियों की बैठक को मजलिस नहीं कहा जा सकता।"

मैं—अरे! तब तो यह बुढ़वा रसिया दिखाई देता है।

हं०—इतना ही नहीं, बारह-तेरह बरस से उस स्त्री का भरण-पोषण सन्तोषकुमार ही करते आते हैं। इस कारण इनकी एकाग्रता और एकनिष्ठा में भी कुछ सन्देह की जगह नहीं है। इसके सिवा उस पहलू पर भी इनकी एकनिष्ठा सोलहों आने मौजूद है। दरवाज़े पर कड़ा पहरा है। वहाँ इनके सिवा दूसरा नहीं जाने पाता।"

मेरी उत्कण्ठा बहुत बढ़ी। मैंने उत्साहित होकर पूछा—'अरे बाप रे! गाने-बजाने के शौक़ीन रसिया बनकर वहाँ घुसना चाहते रहे हो क्या! उस जनी का दर्शन कर चुके हो! कैसी है!"

हंसराज ने कहा—"एक बार अचक्के में मैं दर्शन पा गया था। लेकिन रूप वर्णन करके तुम्हारे सरीखे कुमार ब्रह्मचारी का चित्त-चाञ्चल्य करना नहीं चाहता। असल में वह सुन्दरी है। छब्बीस-सत्ताईस बरस की होगी। लेकिन देखने में अट्ठारह उन्नीस से अधिक की नहीं जान पड़ती। इस बात में श्रेष्ठ समालोचक सन्तोषकुमार की रुचि का बखान किये बिना नहीं रह सकता।"

मैंने हँसकर कहा—"सो तो साफ़ ही दिखाई देता है लेकिन तुमको उनके जीवन की इतनी बातों का खोद-विनोद करने की क्यों ज़रूरत पड़ गई थी सो तो कहो।"

हंसराज ने कहा—"इन बातों के जानने की उद्विग्नता तो हमारी पुरानी दुर्बलता है। इसके सिवा सन्तोषकुमार की वसीयत के विषय में भी मेरे मन में खटका हुआ था।"

"तो यही बाई उनकी जायदाद की मालकिन हैं?"

हं०—हाँ, मालूम तो ऐसा ही होता है। वहाँ हमको एक और सज्जन पुरुष मिल गये। वे फिटफाट से सोलहों आने चुस्त-दुरुस्त थे। झटपट आकर दरबान के हाथ में एक चिट्ठी देकर ही तेज़ी से चले गये। वे पैंतीस-छत्तीस वर्ष के रहे होंगे। लेकिन वह बात अभी छोड़ दो। वह मामला मज़ेदार तो है लेकिन फ़ायदे का नहीं है।

इतना कहकर हंसराज कमरे में चहलक़दमी करने लगे। मैंने समझ लिया कि इन्होंने समझा होगा कि उधर ध्यान देने से उनका मन असल खोज के मार्ग से चलती गाड़ी के समान डिरेलमेंट न हो जाय और सन्तोष के जीवन का गुप्त इतिहास, उनकी उपस्थित विपत् और विपत् से रक्षा करने की समस्या से बढ़ जाय, इस डर से हंसराज उधर बढ़े नहीं; क्योंकि इस तरह आदमी का मन उसके अनजाने में ही गौण वस्तु को मुख्य वस्तु की अपेक्षा प्रधान बना डालता और लक्ष्य-भ्रष्ट कर देता है यह हमको अच्छी तरह मालूम था। मैंने पूछा—"घड़ी से कुछ पाया है कि नहीं?"

अब हंसराज मेरे सामने खड़े होकर हँसते हुए कहने लगे— "घड़ी से तीन तत्त्व निकाले हैं मैंने। पहला—ग्रामोफोन पिन साधारण एडिशन मार्का पिन है, दूसरा उसका वज़न दो रत्ती है। तीसरा—सन्तोष की घड़ी चौपट हो गई है, उसकी मरम्मत नहीं हो सकती।"

मैं—इसका मतलब यह कि कोई ज़रूरत की चीज़ नहीं मिली।

अब हंसराज ने कुर्सी खींचकर आसन जमाया और कहने लगे— "सो कह नहीं सकता यार—पहले मैंने समझा है कि पिन छोड़ने के समय ख़ून करनेवाले और ख़ून होनेवाले के बीच सात-आठ गज़ से अधिक अन्तर नहीं होगा; क्योंकि ग्रामोफोन के पिन सी हलकी चीज़ इससे अधिक दूर छोड़ने पर ठीक निशाने पर पहुँच नहीं सकती। और ख़ूनी का वार कितना अचूक है सो तो देख ही चुके हो। हर बार तीर ठीक निशाने पर लग रहा है।"

मैं—सात-आठ गज़ दूर से मारा तब भी कोई देख नहीं सका ?

हं०—यही तो प्रधान खोज की बात है। विचार से साफ़ ज़ाहिर है कि ख़ून करते समय ख़ूनी दर्शकों में ही था। वह ख़ुद मुर्दे को टेकाकर ले गया होगा। तब भी किसी को उसका पता नहीं लगा। इतना वह आत्मगोपन में प्रवीण है।

मैंने कुछ देर तक सोचकर कहा—"अच्छा, ऐसा भी तो हो सकता है कि ख़ूनी जेब में ऐसा कोई यंत्र लिये घूमता हो जिससे ग्रामोफोन का पिन छोड़ा जा सकता हो और शिकार सामने आने पर फ़ैर कर देता हो। जेब में हाथ डालकर बहुत आदमी चलते हैं इस कारण कोई सन्देह भी नहीं कर सकता।"
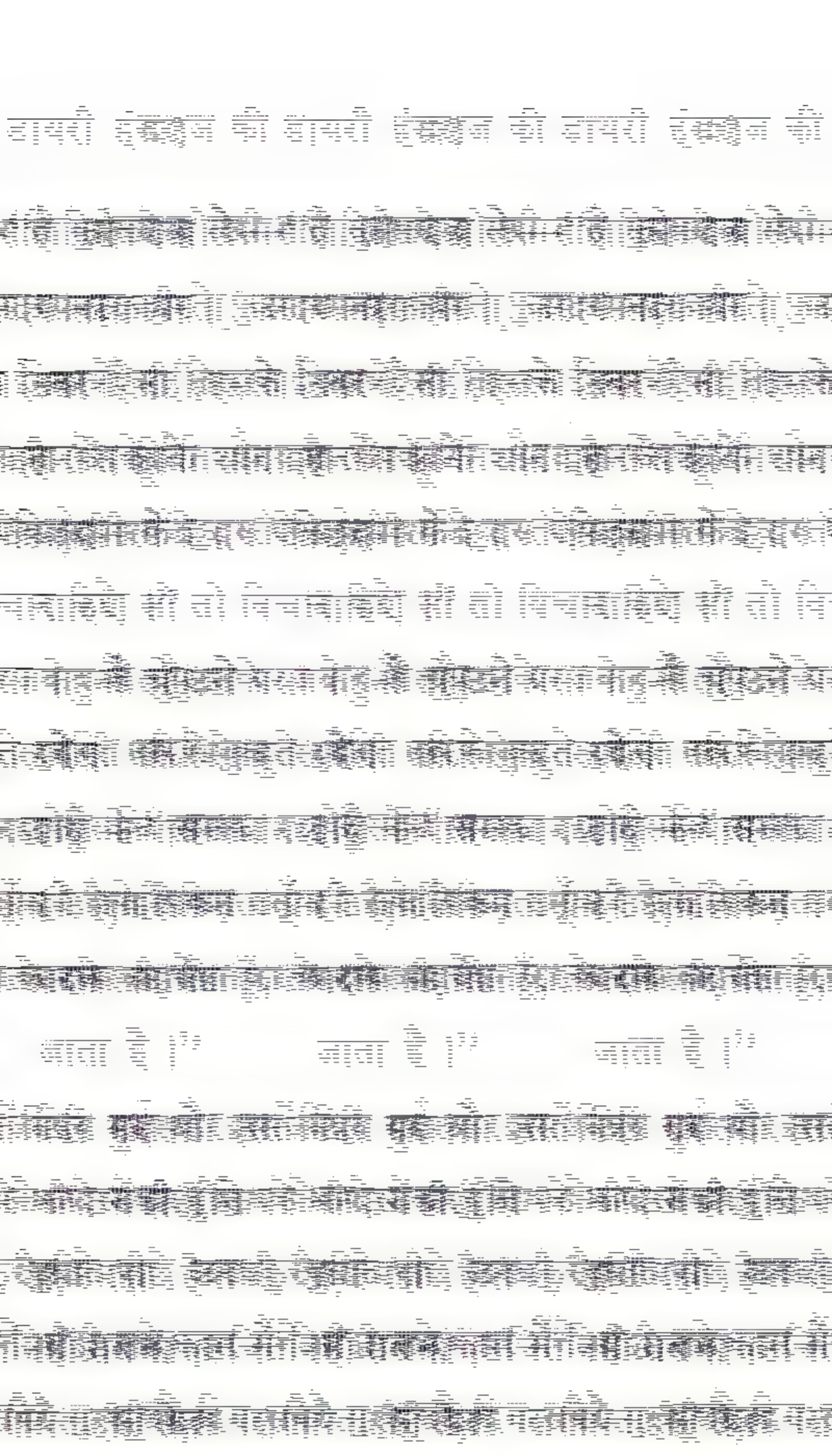
चेहरा कुछ प्रसन्न दिखाई दिया। दुपहरी भर दरवाज़ा बन्द करके भीतर कमरे में काम करते रहे। एक बार टेलीफोन पर उनको किसी से बात करते सुना था। जब साढ़े चार बज गया, दरवाज़ा खोलते हुए मुँह निकालकर बोले—"क्यों कल जो ठीक किया गया था, वह वादा भूल गये क्या? सड़क पर ग्रामोफोन की सूई का प्रत्यक्ष प्रमाण देने का समय हो गया है न?"

मैं सचमुच वह बात भूल गया था। हंसराज ने हँसकर कहा—"आओ ज़रा हम तुमको सजा-सँवार दें। इस रूप में जाने से ठीक नहीं होगा।"

मैंने उनके कमरे में जाकर कहा—"ठीक क्यों नहीं होगा?"

हंसराज ने काठ के किवाड़वाली आलमारी खोलकर भीतर से टिन का एक बक्स निकाला। उसमें से क्रेप, कैंची, स्पिरिटगम आदि निकालकर ब्रुश से मेरे मुँह पर स्पिरिटगम लगाते हुए बोले—"विजयकुमार हंसराज के मित्र हैं, यह बहुतेरे देवताओं को ख़बर है इसी से न इतनी ख़बरदारी करना दरकार है।"

पन्द्रह मिनट पर चेहरा सजाकर जब हंसराज ने बस कहा तब मैंने अपना मुँह आइने में देखा तो बाप रे बाप, यह तो अपने बाप का विजय नहीं, कोई अद्भुत आदमी बन गया हूँ। फ्रेंचकट दाढ़ी और ऐसी घेरदार मूँछ तो विजय को कभी नहीं थी। उम्र भी दस-बारह बरस बढ़ गई है। वह गौर वर्ण कुछ मैला हो गया है। मैंने डरकर पूछा—"इस रूप में सड़क पर निकलना होगा? अगर पुलीस पकड़ ले तब?"

हंसराज ने मुसकुराते हुए कहा—"राम कहो! पुलीस के पुरखा भी तुम्हें पहचान नहीं सकते। अगर विश्वास न हो तो नीचे जाकर किसी परिचित से पूछो कि विजय बाबू कहाँ रहते हैं।"

मैंने और डरकर कहा—"नहीं, नहीं, इसकी ज़रूरत नहीं है। मैं यों ही जाता हूँ।" जब बाहर होने लगा तब हंसराज ने कहा—"जो कुछ करना होगा वह तो तुम जानते ही हो। ख़ाली घूमते समय कुछ सावधानी चाहिए। कोई आदमी पीछा न कर ले।"

मैं—इसका भी डर है?

हं०—कुछ अनहोनी बात है थोड़े! मैं घर ही में हूँ। जहाँ तक बने, जल्दी लौट आना।

जब मैं घर से बाहर निकला तब न जाने कैसा अंडस होने लगा। मैंने जब देख लिया कि मेरे बदले हुए रूप पर किसी का ध्यान नहीं जाता तब कुछ शान्ति मिली, कुछ साहस भी हुआ। मोड़ की एक दूकान पर मैं सदा पान खाया करता था। वह पानवाला मुझे देखते ही सदा सलाम करता था। मैंने उसके पास जाकर ख़ुशी से पान खाया, पैसा दिया। वह दूकानदार बेचारा मुझे तनिक भी पहचान नहीं सका। उसने मुझे बिल्कुल अजनबी समझकर व्यवहार किया।

जब मैं आगे बढ़ा, पाँच बज गया था। तुरन्त ट्राम पर सवार हुआ। ठीक समय बताये मुक़ाम पर पहुँचा। मन में ठीक अभिसारिका की भाँति धारणा न होने पर भी कुछ कुतूहल लिये हुए जोश में था।

लेकिन वह कौतुक देर तक नहीं रहने पाया। उस रास्ते पर आदमियों का चलता सोता पानी की धार की तरह वेग से चल

रहा था। वहाँ ठहरना साधारण काम नहीं था। दो-चार केहुनी की ठोकरें तो बिना डकारे ही पी गया। बेकाम का खम्भे से लगकर खड़े होने में बाधा-विपत भी कम नहीं थी। चौराहे पर पुलीस सार्जएट तैनात था। वह कुछ पूछने के लिए मेरी ओर कई बार देखता था। मेरे मन में आया कि आकर पूछे नहीं कि क्यों खड़े हो। मन में विचारने लगा कि क्या करूँ। पास ही ह्वाइट वे लेडला की दूकान में एक बड़े काच मढ़े द्वार के भीतर तरह तरह की विलायती चीज़ें सजी थीं। उसी ओर टक लगाये देखने लगा। मन में आया कि गँवार देहाती अगर मुझे भूत समझें तो मुज़ायक़ा नहीं। कोई गठकटा समझकर हथकड़ी न भर दे इसी की चिन्ता थी।

घड़ी में देखा तो पाँच बजकर पैंतालिस मिनट हो गये हैं। किसी तरह थोड़ा और खड़े रहें तो ठीक ड्यूटी हो जायगी। इसी भरोसे मैं वहाँ खड़ा रहा। मेरा मन पंजाबी कुरते की जेब में तैनात था। कई बार जेब में हाथ डालकर देखा लेकिन कोई चीज़ हाथ नहीं लगी। निदान जब छः बजा तब शान्ति से रोशनी का खम्भा छोड़कर चल पड़ा। दोनों ओर की जेबें देखीं तो कहीं कोई चिट्ठी नहीं मिली। निराशा के साथ ही साथ कुछ आनन्द भी मिलने लगा। लेकिन साथ ही हंसराज का अनुमान ठीक नहीं है, इसका भी दृष्टान्त प्राप्त हुआ। अब उनको मुझे व्यङ्ग करने का भी अवसर मिलेगा, यही विचारता हुआ मैं ट्राम के नाके पर पहुँचा।

"तस्वीर बनाते हैं बाबू" कान के पास आवाज़ आई। चौंककर देखा तो एक मुसलमान ने मेरे हाथ में एक लिफ़ाफ़ा दे दिया। वह लुङ्गी पहने नीच श्रेणी का था। मैंने उत्सुक होकर लिफाफा खोला तो उसके भीतर से एक बहुत ख़राब तस्वीर बाहर निकल आई। ऐसी तस्वीरों का रोज़गार बम्बई में बहुत चलता है यह हमको मालूम था। इसी से उसको लौटाने चला तो देखा वहाँ वह आदमी ही नहीं है। आगे पीछे सर्वत्र देखा लेकिन उस भीड़ में वह लुङ्गीवाला कहीं दिखाई नहीं दिया।

मैं अब क्या करूँ, यही सोचता था कि एक आदमी के हँसने की आवाज़ आई। देखता हूँ तो एक बूढ़े से साहब मेरे पास आ खड़े हुए। वे भले आदमी जान पड़े। वे बोले—'चिट्ठी तो पा गये हो, अब घर जाओ। ज़रा चक्कर काट कर जाना। यहाँ से ट्राम पर धोबीतालाब होकर कालबा देवी, फिर वहाँ से मारवाड़ी-बाज़ार के नाके पर थोड़ा आगे जाकर पावधूनी से नलबाज़ार जाने की सड़क पर हरीराम मंछाराम तिजोरीवाले की दूकान पार करके तब विक्टोरिया पर बैठकर घर जाना।

सामने एक ट्राम आ खड़ी हुई। वे साहब उसी में दौड़कर चढ़ गये। जब मैं घूम-घामकर पहुँचा तब देखा तो हसराज लम्बे कोच पर लम्बे हुए सिगरेट का धूआँ भकाभक उड़ा रहे हैं। मैं उनके सामने ही कुर्सी खींचकर बैठा और कहा—"कब आये साहब?"

ख़ूब धूआँ उड़ाकर हंसराज ने कहा—"आधा घण्टा हुआ है।"

मैं—तो मेरा पीछा किस वास्ते करते थे!

हंसराज ने उठकर कहा—"जिस काम के लिए मैंने पीछा किया था वह तो हुआ नहीं, एक मिनट देर हो गई। तुम जिस समय रोशनी के खम्भे से खड़े थे, उसी समय मैं ह्वाइट वे लेडला की दूकान में रेशमी मोज़ा पसन्द कर रहा था। तुम से पाँच सात हाथ की दूरी पर था। ग्रामोफोन पिन वाला व्यापारी कुछ सन्देह में पड़ गया, जान पड़ता है। इसका कारण यह कि तुम छटपट बहुत करते थे और बार-बार पाकेट में हाथ देते थे इससे सन्देह होने का मौक़ा है। इसी से उसने वहाँ चिट्ठी नहीं दी। तुम्हारे चले जाने पर मैं भी दूकान से निकला दो ही तीन मिनट की देर हुई थी कि वह आदमी अपना काम करके नौ दो ग्यारह हो गया। मैं जब पहुँचा तब तुम लिफ़ाफ़ा हाथ में लिये भकुआ बने खड़े थे। लिफ़ाफ़ा कैसे मिला तुमको?"

जब लिफ़ाफ़ा पाने का सब हाल कह दिया, तब हंसराज ने पूछा—"अच्छा उस आदमी को अच्छी तरह देख लिया है, याद है?"

मैंने सोचकर कहा—"नहीं, केवल इतना याद है कि उसकी नाक के पास एक बड़ा खोंच लगने का निशान था।"

निराश होकर हंसराज ने कहा—"वह तो नक़ली बनाये हुए था।" तुम्हारी ही मूँछ-दाढ़ी की तरह वह भी था। ख़ैर, वह चिट्ठी दो, मैं देखता हूँ। तब तक तुम कल पर जाकर दाढ़ी-मूँछ साफ़ करके आओ।"

चेहरे के बाल हटाकर जब साफ़ करके मैं लौटा तब हंसराज को देखकर अवाक् हो गया। वे ख़ूब प्रसन्न होकर कमरे में टहल रहे थे। चेहरे पर बड़ा उल्लास देखकर मैंने पूछा—"चिट्ठी में क्या देखा? क्या कुछ मिला?"

हंसराज ने ख़ुशी से मेरी पीठ सहलाते हुए कहा—"एक छोटी सी बात है विजय, बात बहुत छोटी है। लेकिन तुमको अभी नहीं कहूँगा। तुमने कलकत्ते में हवड़े का खुला पुल देखा होगा। मेरे मन की दशा ठीक वैसी ही हो गई थी। दोनों ओर से सड़क आकर बीच में कुछ फाँक रह गई थी। आज दोनों जुट गये हैं।"

मैं—जुट कैसे गये दोनों ? चिट्ठी में क्या पाया ?

हं०—तुम ख़ुद पढ़कर देख लो।

यही कहकर हंसराज ने चिट्ठी मुझे दी। एक ख़राब तस्वीर के सिवा उसमें कुछ और था, लेकिन मुझे वहाँ पढ़ने का मौक़ा नहीं मिला। अब देखता हूँ तो उसमें साफ़ अक्षरों में लिखा है—

"आपके रास्ते का काँटा कौन है ? उसका नाम-ठिकाना क्या है ? आप चाहते क्या हैं ? साफ़ लिखिए। कोई बात छिपाइएगा नहीं। अपनी सही करने की ज़रूरत नहीं है। सब लिखकर लिफ़ाफ़े में बन्द करके अगले रविवार पन्द्रहवीं मार्च को रात के बारह बजे महालक्ष्मी पर रेसकोर्स के पासवाले रास्ते से जाइए। एक आदमी साइकिल पर चढ़कर आपके सामने से आयेगा। वह आपके हाथ से चिट्ठी ले जायगा। उसके बाद उचित समय पर आपको चिट्ठी मिलेगी। अकेले पैदल आइएगा। साथ में कोई रहने से भेंट नहीं होगी।"

दो-तीन बार मैंने चिट्ठी पढ़ी। चिट्ठी ख़ूब रोमांटिक है इसमें कुछ सन्देह नहीं, लेकिन हंसराज की ख़ुशी का कारण मुझे कुछ भी नहीं मालूम हुआ। मैंने पूछा—"क्या बात है ? मैं तो कुछ ऐसा विशेष इसमें नहीं देखता।"

हं०—कुछ नहीं मिला तुमको ?

मैं—तुमने जो अनुमान किया था वह अक्षर-अक्षर ठीक उतर गया। इसमें कुछ सन्देह नहीं। अपने तईं छिपाने में उसका कुछ ख़राब इरादा हो सकता है, इसके सिवा तो मैं और कुछ नहीं पाता।

"बड़े अन्धे हो। इतनी बड़ी चीज़ तुम नहीं देख सके।" कहकर हंसराज चुप हो रहे। इसी समय सीढ़ी पर किसी के आने का पदशब्द सुनाई दिया। कुछ देर तक ध्यान से सुनकर हंसराज कहने लगे—"सन्तोषकुमार हैं। इनसे ये सब बातें कहने की ज़रूरत नहीं है।" और झट मेरे हाथ से चिट्ठी लेकर उन्होंने अपनी जेब के हवाले की।

जब सन्तोष कमरे में आये तब उनका चेहरा देखने पर मैं तो दहल गया। एक दिन में आदमी का रूप इतना बदल जा सकता है, इसकी मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था। सिर के बाल रूखे, बिखरे हुए, कपड़े भी ठीक नहीं, गालों का मांस सुकड़कर झूल गया है। आँखों के नीचे स्याही है। जान पड़ता है उन पर कोई महा विपत् आ पड़ी है जिससे मर्मान्तक आघात लगा है। कल मृत्यु से बच जाने पर भी वे इतने अवसन्न नहीं हुए थे। वे एक कुर्सी पर धप से बैठकर बोले—"एक ख़राब ख़बर आपसे कहने आया हूँ हंसराज बाबू! हमारा वकील भाग गया है।"

हंसराज ने दयार्द्र होकर कहा—"मैं तो जानता था कि वह भागेगा। साथ ही आपके वे गाने-बजाने के साथी भी गये हैं। आपको ख़बर मिली होगी।"

सन्तोषकुमार अब मानो आस्मान से गिरे। अकचकाकर हंसराज का मुँह ताकते हुए बोले—"आप ! आप तो सब जान गये हैं !"

हं०—सब का सब ! कल मैं वहाँ गया था। आपके वकील को भी वहाँ देखा था। उस वकील से आपकी मित्राणी का बहुत पहले से छिपे छिपे चक्र चल रहा था, आपको कुछ पता नहीं था। जब आपने वसीयत कर दी तभी आपका वकील आपकी उत्तराधिकारिणी से मिलने गया था। पहले तो वह उत्सुक होकर विस्मित भाव लेकर गया था। पीछे तो धीरे-धीरे जो हुआ करता है, वही हुआ इतने दिनों तक मौक़ा न मिलने के कारण ही वह कुछ करती नहीं रही। अब आप कुछ मन में रंज मत करें। यह आपके हक़ में अब अच्छा ही हुआ है। अब आपको कुछ डर की बात नहीं है। बेखटके सदर सड़क से जा सकते हैं।

सन्तोष ने शङ्कित भाव से व्याकुल होकर देखते हुए कहा—"इसका मतलब ?"

मतलब यह कि आप जो मन ही मन सन्देह करते हैं और विश्वास नहीं करते वही ठीक है। उन्हीं दोनों ने आपको मार डालने का चक्र रचा था। लेकिन अपने हाथ से नहीं। इसी बम्बई में एक आदमी है जिसको कोई पहचानता नहीं है, कोई जानता नहीं, किसी ने उसको आँख से देखा भी नहीं और उसने पाँच-पाँच निरीह आदमियों को चुपचाप इस दुनिया से बिदा कर दिया है। आपको भी हटा देता, लेकिन आपकी आयु थी इससे जान बच गई।

कुछ देर तक सन्तोषकुमार दोनों हाथों से मुँह ढाँककर बैठे रहे फिर आह की लम्बी साँस लेकर धीरे-धीरे बोले—"इस बुढ़ापे की उमर में अपने किये हुए पाप का प्रायश्चित्त भोग रहा हूँ। किसी को दोष देने की ज़रूरत नहीं है. चालीस बरस तक मैंने अपनी ज़िन्दगी बेदाग़ निबाही। उसके बाद एक-बएक मेरा पाँव फिसल गया। एक दिन मैं बालकेश्वर का तपोवन देखने गया था। वहाँ एक अनुपम रूपवाली सुन्दरी को देखकर मैं पागल हो गया। ब्याह से मैं सदा घृणा करता था। लेकिन उससे ब्याह करने को मैं व्याकुल हो उठा। अन्त को मुझे मालूम हुआ कि वह रंडी की लड़की है। ब्याह तो उससे नहीं किया, लेकिन मैं उसको छोड़ भी नहीं सका। यहाँ शहर में लाकर एक भाड़े के मकान में मैंने उसको ठहरा दिया। तब से मैं उसको, तेरह बरस हो गये, स्त्री के समान ही रखता आया हूँ। उसको सब जायदाद लिख दी थी। किसी दिन उस पर मेरा सन्देह नहीं हुआ। यह कभी नहीं समझ में आया कि पाप के रक्त से ही जिसका जन्म हुआ है वह कभी साध्वी नहीं हो सकती। ख़ैर, इस बुढ़ौती में यह शिक्षा मुझे मिल गई। शायद अगले जन्म में यह काम आवे।" फिर कुछ देर तक चुप रहकर उन्होंने पूछा—"अच्छा, ये दोनों कहाँ गये, आप जानते हैं?"

हं०—नहीं, मैं जानता नहीं। लेकिन जानने से कोई फ़ायदा नहीं है। प्रकृति जिस रास्ते पर उन्हें ले जा रही है उस पर आप नहीं जा सकेंगे। देखिए सन्तोष बाबू, आपका यह कर्म समाज के लिए निन्दित हो सकता है लेकिन मैं आपको श्रद्धा की दृष्टि से ही देखूँगा।

आप मन से शुद्ध हैं। कीचड़ में भी आप निर्मल बच गये हैं यही प्रशंसा की बात है। इस घड़ी आपको इसकी चोट लगी है; क्योंकि इस तरह के विश्वासघात की चोट से घाव होना स्वाभाविक है लेकिन बाद को आपकी समझ में आ जायगा कि इससे अधिक भलाई का काम आपके वास्ते दूसरा नहीं होता।

सन्तोष ने जोश में आकर कहा—"देखिए हंसराज बाबू! आप हमसे उम्र में बहुत छोटे हैं। लेकिन आपसे जो मुझे सन्तोष प्राप्त हुआ है उसकी मैं कहीं किसी से आशा नहीं कर सकता। अपनी लज्जा के पाप का फल जो भोगता है उससे कोई सहानुभूति नहीं दिखलाता। इसी कारण उसका प्रायश्चित्त इतना भयङ्कर हो उठता है। आपकी सहानुभूति से मेरे पाप का आधा बोझा दूर हो गया है। मैं और क्या कहूँ। आपका मैं ज़िन्दगी भर ऋणी रहूँगा।"

सन्तोष बाबू के बिदा हो जाने पर उनकी अद्भुत ट्रेजडी की छाया से मेरा मन भर गया। सोने से पहले मैंने हंसराज से पूछा—"अच्छा सन्तोषबाबू का ख़ून करने की चेष्टा के पीछे उनका वकील और उनकी यह धारिन है यह कब तुमको मालूम हुआ?"

हंसराज ने कड़ी-काठ से नज़र हटाकर कहा—"कल सन्ध्या को।"

मैं—तब भागने के पहले उनको पकड़ा क्यों नहीं?

हं०—पकड़कर करता क्या? कुछ लाभ नहीं होता। किसी अदालत में उनका अपराध साबित नहीं हो सकता था।

मैं—लेकिन उनके द्वारा असल ख़ूनी ग्रामोफोन पिन के असामी का पता तो चल जाता।

हंसराज ने हँसते हुए कहा—"अगर इसकी सम्भावना होती तब मैं ख़ुद उनको यहाँ से नहीं खदेड़ता।"

"तो तुम्हीं ने उनको खदेड़ा है ?"

हं०—हाँ, मैंने ही जब देखा कि सन्तोषकुमार की जान बच गई तब वे लोग भाग-भाग कर रहे थे। मैं आज सबेरे जाकर कह आया कि मामले का बहुत कुछ पता लग गया है। अगर जान की ख़ैर चाहो तो इसी दम रफ़ूचक्कर हो जाओ। यह सब इशारे से ही कह आया था। वकील साहब बुद्धि रखते ही हैं। थोड़ा कहना बहुत समझने का गुण उनके लिए मामूली बात है; बस, सन्ध्या की गाड़ी से ही माल सहित ग़ायब हो गये।

मैं—लेकिन उनको भगा देने से तुमको क्या लाभ हुआ ?

हंसराज एक जम्हाई लेकर उठ खड़े हुए। बोले—"लाभ तो उतना कुछ नहीं, लेकिन एक दुष्ट का दमन हो गया। वह वकील ख़ाली हाथ भागनेवाला तो था नहीं। मनकला का धन जो कुछ था, सब लिये-दिये भागा है। मैं समझता हूँ, इस घड़ी पूने की पुलीस ने उसको हवालात में बन्द भी कर दिया है। पहले ही से उनको ख़बर हो ही गई थी। वकील साहब की कम से कम दो वर्ष की क़ैद तो कोई किसी तरह रोक सकता नहीं। उनको फाँसी की सज़ा ठीक होती, लेकिन इस अवसर पर वह नहीं होने पर भी दो वर्ष भी बुरा नहीं है भोगने को।"

दूसरे दिन एक अपरिचित भेंट करने आये। सबेरे चाय पानी करके प्याला नीचे रखता हूँ कि दरवाज़े की कुण्डी खड़खड़ाने लगी।

हंसराज ने कहा—"कौन है ? अन्दर आओ।"

एक अच्छी पोशाकवाला युवक भीतर आया। दाढ़ी-मूँछ सफाचट, इकहरा बदन, तीस बरस के आसपास का होगा। हम लोगों को देखते ही भलमनसाहत का नमस्कार करके बोला—"सबेरे ही तकलीफ़ देने आया हूँ, क्षमा कीजिएगा। मेरा नाम कृष्णदेव नारायण है। मैं बीमा कम्पनी का एजेंट हूँ।" इतना कहकर बिना बताये ही एक कुर्सी पर बैठ गया।

हंसराज ने लापरवाही से कहा—"हम लोगों के पास जीवन-बीमा के लायक़ तो पैसा नहीं है।"

एजेंट सुनकर हँस पड़े। ऐसे भी लोग हैं जिनका चेहरा देखने में बहुत अच्छा होता है, लेकिन जब हँसते हैं तब चेहरा बदल जाता है। मालूम हुआ कि वह बड़ा पनखौआ है। दाँत पान के रस से रँगे पड़े हैं। इतना सुन्दर मुख हँसते समय इस तरह विरूप हो जाता है देखकर आश्चर्य हुआ।

एजेंट साहब हँसते-हँसते कहने लगे—"मैं बीमा कम्पनी का एजेंट हूँ लेकिन आपके पास बीमा के काम के लिए नहीं आया हूँ। यह बात सही है कि आजकल हम लोगों को देखकर अपने नातेदार भी किवाड़ बन्द कर देने लगे हैं। इसमें उन लोगों को दोष भी नहीं दिया जा सकता, लेकिन आप लोग कुछ चिन्ता मत कीजिए। मैं जिस काम के वास्ते आया हूँ, उसमें मुझे हंसराज बाबू की ज़रूरत है। उनसे ही मुझे सलाह लेनी है। आप ही का नाम हंसराज बाबू प्रसिद्ध डिटेक्टिव है न ? आपको कुछ आपत्ति न हो तो मैं अपना मतलब कहूँ।"

हं०—सलाह लेने में कुछ दर्शनी पहले चाहिए।

कृष्णदेव नारायण ने अपने मनीबेग से दस रुपये का एक नोट टेबुल पर रखकर कहा—"मेरी बात कुछ ऐसी छिपाने की नहीं है लेकिन फिर भी—"

अब मैं उठने लगा, तब हंसराज बाबू ने घूरकर रोका। कहा—"ये हमारे सहायक हैं। जो कुछ बात हो आप इनके सामने ही कहिए।"

अब कृष्णदेव ने शुरू कर दिया। कहा—"जब आपके सहायक हैं तब तो हमारे भी सहायक ही ठहरे, उनके सामने अब किसको आपत्ति हो सकती है। अच्छा आपका शुभ नाम ? माफ़ कीजिएगा विजय बाबू। आप हंसराजबाबू के बन्धु हैं, यह मैं नहीं समझ सका। आप बड़े भाग्यवान् हैं बाबूजी ! सदा ऐसे एक प्रसिद्ध डिटेक्टिव (जासूस) के साथ रहकर तरह-तरह के अपराधों का पता लगाने में सहायक होना कम सौभाग्य की बात नहीं है। आपके जीवन की एक घड़ी भी बेकाम नहीं है। मेरे मन में भी कभी-कभी आ रहा है कि इस जीवन-बीमा के धन्धे से छूटकर आपके समान ही जीवन बिताता अगर..."

यही कहकर कृष्णदेव ने मचले से एक बीड़ा पान निकालकर मुँह में रखा। और हंसराज बाबू कुछ अधीर से होकर बोले—"तो अब आप अपनी सलाहवाली बात साफ़ साफ़ कहें तो सब तरह से सुभीता हो।"

अब झट कृष्णदेव ने उनकी ओर मुँह करके कहना आरम्भ किया। बोले—"देखिए! मैं बीमा कम्पनी का एजेंट हूँ यह तो

पहले ही कह चुका हूँ। इंडिया जुएल इन्श्योरेंस का मैं एजेंट हूँ। मैंने कोई दस लाख का इन लोगों का काम किया है। अब मेरी सेवा से ख़ुश होकर इस कम्पनी ने मुझे बम्बई ब्रांच का काम सौंप दिया है। मैं अब आठ-नव महीने से यहीं रहता हूँ। यहाँ के ब्रांच का इनचार्ज हूँ।

"पहले तो मैं दो महीने तक काम अच्छी तरह चलाता रहा हूँ। लेकिन इधर अकस्मात् एक आफ़त आ घहराई है। किसी का नाम लेना ठीक नहीं है। लेकिन एक दूसरी बीमा कम्पनी का एक आदमी मेरे पीछे लग गया है। मैं फुटकर काम तो करता नहीं हूँ। दो-चार हज़ार के काम तो मेरे एजेंट लोग करते हैं लेकिन बड़े ग्राहक आने पर उनसे मैं ही बातचीत और काम अंजाम किया करता हूँ। इस आदमी ने, जो मेरे पीछे लगा, मेरे बड़े-बड़े ग्राहकों को तोड़ना आरम्भ किया है। जहाँ मैं जाता, पीछे-पीछे यह भी पहुँचने लगा और कम्पनी की बदनामी करके ग्राहकों को भड़काने और मेरी सब मिहनत व्यर्थ करने लगा। यहाँ तक होने लगा कि बड़ी-बड़ी लाइफ़ों का काम मेरे हाथ से निकल जाने लगा। इस तरह चार-पाँच महीने बीत गये। कम्पनी की ओर से तक़ाज़ा आने लगा। लेकिन मैं करता क्या, कैसे उस आदमी से अपने व्यवसाय की रक्षा करूँ, इसका कुछ ठीक नहीं कर सका। मामला मुक़दमा करके भी बचाव नहीं दिखाई दिया; क्योंकि उसमें कम्पनी का रुपया ख़र्च होता। इस तरह भी लगभग एक महीना बीत गया। लेकिन उस कण्टक को मैं दूर नहीं कर सका।"

इतना कहकर कृष्णदेव ने अपने हैंडबैग से सावधानी से दो चिरकुट निकाले। उनमें से एक छोटा टुकड़ा काग़ज़ का निकालकर हंसराज बाबू के हाथ में दिया। कहा—"दो हफ़्ते हुए, यह विज्ञापन मेरे हाथ में आया। जान पड़ता है आपकी नज़र इस पर नहीं पड़ी है। और ऐसी बात भी नहीं है कि नज़र पड़ती। यह चार-छः लाइन का विज्ञापन है साहब, लेकिन पढ़ते ही मेरा मन जो बड़ा व्याकुल हुआ था, उमंग से भर गया। इस मार्ग-कंटक दूर होने की बात पर बड़ा भरोसा हुआ कि मेरे मार्ग का यह काँटा भी दूर होगा। झट इसके लिखे अनुसार स्थान पर ठीक समय रोशनी के खम्भे से सटकर खड़ा हो गया। इसी शनिवार की बात है बाबूजी!"

मैंने सिर आगे करके देखा तो वही मार्ग-कण्टक के विज्ञापन का कटिंग है। कृष्णदेव ने कहा—"पढ़ा न आपने; देखा न कैसा मज़े का विज्ञापन है! मैं क्या कहूँ साहब! वहाँ खड़े-खड़े मुझे झिनझिनी चढ़ गई। लेकिन कहीं किसी ने कुछ ख़बर नहीं ली। मैं निराश होकर लौट पड़ा। लेकिन थोड़ा ही आगे आकर देखता हूँ तो जेब में एक चिट्ठी है। देखिए यही है वह चिट्ठी!"

यह कहकर वह चिट्ठी कृष्णदेव ने हंसराज बाबू को दी। उन्होंने खोलकर पढ़ना शुरू किया। मैंने भी उनकी पीठ की ओर से झुककर देखा तो ठीक मुझे जो चिट्ठी मिली थी उसी तरह की है। केवल अन्तर यही कि सोमवार के बदले अगले बुधवार को रात के बारह बजे मिलने को कहा है।

कृष्णदेव चिट्ठी पढ़ने का समय बीतने पर कहने लगे—"पहली बात तो यही नहीं मालूम हुई कि मेरी जेब में चिट्ठी कैसे आई ! फिर चिट्ठी पढ़कर ही कलेजा काँप गया। मुझे तो बाबू साहब ! मिठाई पसन्द नहीं है। लेकिन इस चिट्ठी में आदि से अन्त तक मिठाई भरी देखी। इसमें न जाने कैसी एक भयङ्कर दुरभिसन्धि छिपी है, नहीं तो इतना सब काम इस तरह छिपकर क्यों होता ! यह आदमी कौन है, किस स्वभाव का है, कुछ भी मालूम नहीं। चेहरा भी कभी नहीं देखा। फिर हमको आधी रात को सुनसान जगह में बुलाता है। भला यह कैसी भयानक ख़तरे की बात है, आप ही विचार कीजिए।"

यही कहकर वे मेरा मुँह ताकने लगे लेकिन मेरे जवाब देने से पहले ही हंसराज बाबू ने कहा—"उनसे विचार कराने की कुछ भी ज़रूरत नहीं है। आप बतलाइए मुझसे क्या सलाह चाहते हैं।"

कुछ रुककर कृष्णदेव ने कहा—"यही तो मैं कहता हूँ कि चिट्ठी लिखनेवाले को मैं जानता नहीं हूँ। उसकी बातों से भी बड़ा सन्देह होता है। इसके भाव से साफ़ जान पड़ता है कि आदमी अच्छा नहीं है। ऐसी दशा में इसका जवाब लेकर जाना क्या उचित है ? मैं बराबर उसी दिन से सोच में पड़ा हूँ। मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं करती। यही एक दिन अब बाक़ी रह गया है इसी से आपसे पूछने आया हूँ कि क्या करूँ।"

कुछ देर चिन्ता करके हंसराज बाबू ने कहा—"देखिए, इस घड़ी मैं तुरत जवाब नहीं दे सकता। ये दोनों काग़ज़ यहाँ रख जाइए।

मैं सोच विचार कर कल सबेरे आपको बतलाऊँगा कि क्या करना चाहिए। अभी समय है। चिन्ता की कुछ बात नहीं है।"

कृ० —लेकिन कल सबेरे तो मैं आ नहीं सकूँगा। एक जगह जाना है। अगर आज सन्ध्या को या आठ-नव बजे रात तक आऊँ तो ठीक नहीं होगा ?

हंसराज बाबू ने सिर हिलाकर नाहीं की। कहा—"नहीं, आज मुझे दूसरे काम में जाना है।" इतना कहकर उन्होंने विस्मित दृष्टि से कृष्णदेव की ओर देखा। फिर बात फेरकर बोले—"लेकिन आपको घबराने की बात नहीं है। आप कल सन्ध्या के चार साढ़े चार बजे आवेंगे, तब भी समय काफ़ी मिलेगा।"

"अच्छी बात है। मैं उसी समय आऊँगा।" कहकर कृष्णदेव ने फिर मचला निकाला और दो बीड़ा मुँह में देकर गाल फुलाये हुए बोले—"आप पान खाते हैं न!" इसके साथ ही मचला उन्होंने हमारी ओर बढ़ा दिया। फिर कहते गये—"हमारी तो ऐसी आदत पड़ गई है कि इसके बिना रह नहीं सकते। रोटी चाहे न मिले लेकिन पान चाहिए—इसके बिना तो दुनिया भर अँधेरा हो जाता है। अच्छा अब चलूँ। नमस्कार!"

हम लोगों ने भी नमस्कार किया। दरवाज़े तक आकर कृष्णदेव ने फिर कहा—"पुलीस में ख़बर देने से ठीक नहीं होगा। अगर इत्तिला दी जाय तो पुलीस इस आदमी का नाम-गाँव निकाल सकती है।"

अब तो हंसराज बिगड़ उठे। बोले—"पुलीस की मदद लेना हो तब मुझसे यह सब कहने की ज़रूरत क्या है? मैंने आज तक

कभी पुलीस के साथ काम नहीं किया, न करना चाहता हूँ। यह अपना रुपया आप लेकर पुलीस में जा सकते हैं।'

कृ०—नहीं, नहीं! मैं आपकी राय माँगता था। पुलीस में जाने का मेरा मतलब हरगिज़ नहीं है।

जब इतना कहकर कृष्णदेवजी चले गये, तब हंसराज ने जो नोट टेबुल पर लौटा दिया था उसे लिये हुए कमरे में चले गये। फिर उन्होंने ज़ोर से द्वार बन्द कर लिया। वे कभी-कभी बिना कारण भी चिढ़ जाते थे, लेकिन कुछ देर तक अकेले रहने पर फिर शान्त हो जाते थे। हमको उनका यह स्वभाव मालूम था। इसी कारण मैं चुपचाप अख़बार उठाकर पढ़ने लगा।

कई मिनट बाद मैंने सुना कि हंसराज बाबू बग़लवाले कमरे में बक रहे हैं। समझ में आ गया कि टेलीफोन में बात कर रहे हैं। दो एक अँगरेज़ी के शब्द सुनाई दिये, लेकिन किससे बात करते हैं मैं नहीं पहचान सका। घंटे भर तक बातें होती रहीं। उसके बाद दरवाज़ा खोलकर हंसराज बाहर आये। देखा तो उनकी स्वाभाविक प्रसन्नता चेहरे पर विराजमान है। मैंने पूछा—"किसको फोन करते थे?"

उस बात का जवाब न देकर हंसराज कहने लगे—' कल मारकेट की ओर से लौटती बेर एक आदमी ने तुम्हारा पीछा किया था जानते हो?"

मैंने विस्मित चकित होकर कहा—"नहीं, मैं नहीं जानता! तुमने पीछा किया था?"

हं०—हाँ किया तो था ज़रूर इसमें कुछ भी मीन-मेख नहीं है, लेकिन उस आदमी का बड़ा साहस था। वह साहस असीम था यही मैं सोच रहा हूँ।

इतना कहकर हंसराज आप ही मुसकुराने लगे। मैंने कहा—"तो मेरा पीछा करने में कौन बड़ा दुःसाहस हो गया, मेरी समझ में तो नहीं आता।"

हंसराज की बातें कभी-कभी ऐसी ही पहेली की तरह हुआ करती हैं कि उनका अर्थ समझने की चेष्टा बिलकुल व्यर्थ होती है। इसके लिए उनसे पूछना भी व्यर्थ ही है। समय आये बिना वे कभी आप कहते भी नहीं, इसी कारण और कुछ न कहकर मैं स्नान को चला गया।

दोपहरी और सन्ध्या दोनों हंसराज ने चुपचाप बैठकर बिता डालीं। कृष्णदेव के विषय में मैंने दो एक बातें पूछीं, लेकिन उन्होंने सुनी ही नहीं। चुपचाप कुर्सी पर लदे रहे। आँखें मुँदी हुई थीं। अन्त को चौंककर उठे और बोले—"अरे कृष्णदेव नारायण राय! आज वे सबेरे आये थे! उनकी बात तो अभी मैंने कुछ सोची ही नहीं है।"

रात को भोजन के बाद बैठे धुआँ खींच रहे थे। घड़ी में दस बजा। हंसराज चौंककर कुर्सी से उठे। बोले—"उठो बहादुर, तरकस लेकर तैयार हो जाओ। अब साज-सरंजाम की तैयारी हो, नहीं तो ठीक समय पर पहुँचने में देर हो जायगी।"

मैंने फिर चौंककर पूछा—"तो अब फिर तैयारी कैसी?"

हंसराज ने कहा—"वाह ! मार्गकण्टकवाले उस ज़हरीले पिन का नेवता करना होगा। भूल गये क्या !"

मैं तो डर के मारे उठ खड़ा हुआ, कहा—"माफ़ करो, इतनी रात को मैं 'अकेले वहाँ नहीं' जा सकूँगा। तुम जा सकते हो अकेले।"

हं०—मैं तो जाऊँगा ही। तुमको भी जाना चाहिए।

मैं—लेकिन नहीं जायँ तब ! उस मार्गकण्टक के लिए इतनी चिन्ता, इतना कुतूहल क्यों ! उससे तो अगर ग्रामोफोन पिन की बात लेते तो अधिक काम सधता।

"सो तो होता लेकिन इधर यह कुतूहल भी देख लेने में क्या बुरा है ! ग्रामोफोन पिन तो भागता नहीं है। इसके सिवा कल्ह कृष्णदेव नारायण सलाह लेने आवेंगे। उनका भी तो कुछ काम होना चाहिए !"

मैं—लेकिन दो के जाने से तो काम बनेगा नहीं। वह तो अकेले ही जाने को लिखता है।

हं०—इसका उपाय मैंने किया है। चलो उस कमरे में। समय बहुत ही कम है।

लाइब्रेरी में जाकर हंसराज ने बड़ी फुर्ती से मेरा चेहरा रँगकर सजा दिया। मैंने दीवार में टँगे आईने में देखा तो फिर वही दाढ़ी-मूँछ, वही फ्रोकट जादू की तरह तैयार हो गया है। ज़रा भी कहीं कुछ कोर कसर नहीं है। अब मुझे छोड़कर हंसराज अपनी रचना में लगे। चेहरा कुछ नहीं बदला। दराज से काले रंग की साहबी पोशाक निकाल कर पहन ली। पाँव में काले रबरसोल का जूता पहना।

मुझे आईने के सामने खड़े कराकर पाँच-सात हाथ दूर से पीछे जाकर खड़े हो गये। बोले—आईने में हमको देखते हो ?

मैं—नहीं।

"अच्छी बात है। अच्छा सामने थोड़ा और बढ़ो। अब देखा ?"

मैं—नहीं

"बस ! काम फ़ते है। अब एक पोशाक पहन लेना काफ़ी है।"

मैं—अब क्या ?

घर में जाकर ही मैंने देखा था कि हंसराज के टेबुल पर चीना मिट्टी की दो तश्तरियाँ पड़ी थीं। होटल में जैसी तश्तरियों में मटन चप खाने को मिलता है वैसी ही थीं। उनमें से एक को उठाकर हंसराज ने मेरी छाती पर उलटकर रक्खा और धोती की किनारी जो फाड़कर जेब में रक्खे थे निकाली। उसी से ख़ूब कसकर बाँध दिया। कहा—"ख़बरदार गिरने न पावे। बस, ऊपर से कोट पहन लो। कुछ मालूम नहीं हो सकेगा।"

मेरे विस्मय का ठिकाना नहीं रहा। भकचकाकर पूछा—"यह सब क्या हो रहा है ?"

हंसराज ने हँसकर कहा—"अरे अभिसार करने चले हो। चोली बिना कसे कैसे बनेगा ! घबराओ नहीं, मैं भी पहनता हूँ।"

अब दूसरी तश्तरी अपनी छाती पर रखकर हंसराज ने अपने कोट का बटन लगा दिया। बाँधने की ज़रूरत नहीं पड़ी। इस तरह साज-सरंजाम के बाद रात के साढ़े ग्यारह बजे हम लोग घर से रवाना हुए।

दराज से कई चीज़ें लेकर पाकेट में रखते हुए हंसराज ने कहा—"चिट्ठी ले ली है ? अरे ले लो जल्दी ! ले लो। एक सादा काग़ज़ लिफ़ाफ़े में डाल लो।"

बस सड़क पर आते ही एक ख़ाली गाड़ी मिली उसी पर हम लोग सवार हो गये। रास्ते में सन्नाटा था। दूकान-पाट सब बन्द था। हम लोगों की गाड़ी बड़ी तेज़ी से चली। जब मुक़ाम सामने दिखाई दिया, हम लोग गाड़ी से उतर पड़े। वहाँ कोई आदमी नहीं था। गाड़ीवाला भाड़ा लेकर चला गया। चारों ओर की रोशनी इस निःस्तब्ध स्थान को और भयावनी बना रही थी। घड़ी में देखा तो बारह बजने में अभी दस मिनट बाक़ी हैं।

अब क्या करना होगा, इसकी सलाह पहले ही हो चुकी थी। मुँह से कुछ कहना नहीं पड़ा। मैं आगे आगे चला। हंसराज बाबू छाया की तरह मेरे पीछे-पीछे अदृश्य रूप से चलते हुए। उनका काला धड़ और शब्द-हीन साइलेंट जूता मेरे लिए भी कायारहित हो गया। हमारे क़दम से क़दम मिलाकर ठीक हमसे छः इंच पीछे-पीछे चलने लगे। लेकिन फिर भी मैं अकेले ही चलता गया। दोनों ओर रोशनी ख़ूब थी, लेकिन साफ़ नहीं थी। जब सड़क के दोनों ओर ऊँचे मकान हों तब रोशनी प्रतिफलित होकर ख़ूब उज्ज्वल हो उठती है। यहाँ वह बात नहीं थी। मैदान में उसकी ज्योति को दोनों ओर के ख़ाली मैदान आधा मानो निगल जाते थे। ऐसी दशा में सामने से आकर कोई ऐसा नहीं समझ सकता कि मैं अकेला नहीं जा रहा हूँ। मेरे पीछे एक अन्धकार-मूर्ति चल रही है।

पास की ट्रामलाइन पर ट्राम गाड़ियों के आने-जाने का शब्द बहुत पहले से बन्द हो चुका है। मैं सड़क के बीच से पैदल चलने लगा। पीछे एक घड़ी में बारह बजने की आवाज़ आई। घड़ियाली ने भी बारह का गजल बजाया और घड़ियों में भी बारह बजने लगे। आधी रात का सन्नाटा चारों ओर छा गया। अब हंसराज ने सायँ सायँ स्वर में कान के पास आकर कहा—अब हाथ में चिट्ठी ले लो।

देर से मैं भूल गया था कि पीछे से हंसराज आ रहे हैं। झट जेब से चिट्ठी निकालकर हाथ में ले ली। थोड़ा ही आगे कोई पाँच मिनट चलने पर एक आदमी सामने से आता दीख पड़ा। मेरे कान में सायँ-सायँ स्वर में आवाज़ आई—"आ रहा है, तैयार रहो।"

इसी समय देखा तो चिकने रास्ते पर कोई बिलकुल काली चीज़ तेज़ी से आ रही है। फिर बाइसिकल पर चढ़ी वह मूर्त्ति साफ़ दिखाई देने लगी। मैंने लिफ़ाफ़ावाला हाथ बढ़ाया। सामने आती हुई बाइसिकल की गति भी मंथर हो पड़ी। देखा तो वह सवार काला सूट पहने हुए मेरी ओर तेज़ नज़र से देख रहा है। अब धीरे धीरे साइकिल मेरी ही ओर आने लगी। जब हमारे उसके बीच में दस गज़ अन्तर था तभी साइकिल की घंटी बजी। साथ ही मेरी छाती में बड़ा धक्का लगा, जिससे मैं उलटा गिर गया। मेरी छाती पर का बँधा प्लेट चूर हो गया जान पड़ा। इसी समय पलक मारते ही एक कायब हो गया। मेरे गिरते ही हंसराज बिजली की तरह आगे कूद पड़े। मालूम हुआ कि बाइसिकलवाला मेरे पीछे के एक आदमी के वास्ते तैयार नहीं था। तब भी वह किनारा काटकर भागना चाहता

था, लेकिन भाग नहीं सका। हंसराज उसको एक ही धक्के में साइकिल सहित गिराकर उसके ऊपर चढ़ बैठे।

जब मैं देह झाड़कर हंसराज बाबू की मदद के वास्ते उठा तब देखता हूँ तो वे उस साइकिलवाले की छाती पर चढ़े मज़बूत बैठे हैं। दोनों हाथों से उसका कल्ला पकड़े हैं। साइकिल अलग गिरी है। मुझे देखते ही बोले—"देखो विजय मेरी जेब से रेशमी रस्सी निकालकर इसके दोनों हाथ कसके बाँधो तो जल्दी से।"

वह पतली रेशमी रस्सी निकालकर मैंने उसको ख़ूब कसके बाँधा। हंसराज ने कहा—"बस हो गया। विजय! इस भले आदमी को पहचान नहीं सकते? यही आज सबेरेवाले कृष्णदेवनारायण राय हैं। और गहरा परिचय चाहो तो यही हैं ग्रामोफोन-रहस्य के मेघनाद।"

अब मेरे मन की दशा क्या हुई सो कहने की ज़रूरत नहीं है। इस हालत में भी कृष्णदेव दाँत निकालकर हँसा; कहा—"अच्छा हंसराज बाबू, अब आप मेरी छाती पर से उतर सकते हैं। अब मैं भागूँगा नहीं।"

हंसराज ने कहा—"अच्छा विजय, इसके सब जेब अच्छी तरह देख लो। कोई हरबा-हथियार है या नहीं?"

एक जेब से एक ग्लास, दूसरे से पान का मचला निकला। उसे खोलकर देखता हूँ तो अभी उसमें चार बीड़े पान मौजूद हैं।

हंसराज बाबू जब छाती पर से उतर पड़े, तब कृष्णदेवनारायण उठ बैठा। कुछ देर तक वह हंसराज बाबू को घूरता रहा, फिर बोला—"हंसराज बाबू, आप मुझसे अधिक बुद्धिमान् हैं; क्योंकि मैंने

आपकी बुद्धि की अवज्ञा की थी, लेकिन आपने नहीं की। यह नीति है कि शत्रु की शक्ति को तुच्छ नहीं जानना चाहिए। यह शिक्षा मुझे देर में प्राप्त हुई। अब वह काम में नहीं आ सकती।"

यह कहकर वह ऐसा हँसा कि मालूम हुआ बड़ी तकलीफ़ से हँसी घसीट लाया है। अब हंसराज बाबू ने अपने फ्रंट पाकेट (सामने की जेब) से पुलीस की सीटी निकालकर फूँकी और मुझे कहा—"विजय! जल्दी से साइकिल रास्ते से हटाकर रक्खो। देखो, उसकी घंटी पर हाथ नहीं देना। वह बड़ी भयङ्कर वस्तु है।"

हँसकर कृष्णदेव ने कहा—"देखता हूँ, आप तो सर्वजानता सर्वज्ञ हैं। आप हैं बड़े ख़तरे के आदमी, यह मुझे मालूम ज़रूर था। यही कारण है कि मैं आज आपके फन्दे में पड़ गया हूँ। मैंने समझा था कि आप अकेले आवेंगे, यहाँ सन्नाटे में भेंट होगी। लेकिन आपने सब ओर से मुझे जकड़कर फाँस लिया। मैं तो इस बात के घमण्ड में था कि मैं ख़ूब अभिनय कर सकता हूँ। लेकिन आप तो और भी कमाल दरजे के आर्टिस्ट निकले। आपने आज सबेरे मेरा नक़ली रूप खोलकर मेरा मन नग्न करके देख लिया था और मैंने तो आपका ऊपरी नक़ली चेहरा ही देख पाया था। भीतर की अगाध बुद्धि की थाह मैं नहीं पा सका। ख़ैर, होनहार होके ही रहती है। मेरा गला सूख रहा है। थोड़ा जल दीजिएगा?"

हंसराज ने कहा—"जल तो यहाँ नहीं है। चित्रकूट में बाण-गङ्गा बनाने की शक्ति मेरे पास होती तो यहीं पिस्तौल खोदकर मैं पानी पिला देता। अब थाने में चलकर ही पानी मिलेगा।"

कृष्णदेव फिर कठिनता की हँसी चेहरे पर लाकर बोला—"बात तो सही है, यहाँ पानी कहाँ मिलेगा।" कुछ देर चुप रहकर उसने अपना पान का मचला देखा, कहा—"अच्छा एक बीड़ा पान मिलेगा ? यह मैं जानता हूँ कि असामी का पान पाना क़ानून से बाहर की बात है लेकिन इससे मेरी प्यास जाती, इसी से माँगता हूँ।"

हंसराज बाबू के इशारे से मैंने मचले से दो बीड़ा पान निकालकर उसके मुँह में डाल दिये। अब उसने पान चबाते हुए कहा—"धन्यवाद है। अब आप लोग वह बाक़ी दो बीड़ा खा सकते हैं।"

हंसराज बाबू कान खोले हुए पुलिस की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर से मोटरसाइकिल की फटाफट सुनकर कृष्णदेव ने कहा—"पुलिस तो आ रही है। हमको छोड़ेंगे नहीं ?"

हं०—क्यों छोड़ेंगे क्यों ?

अब कृष्णदेव ने फिर ज़बरदस्ती मुस्कुराहट लाकर कहा—"तो क्या पुलीस में देंगे ही ?"

हं०—और नहीं क्या ?

"हंसराज बाबू ! बुद्धिमान् लोग भी भूल कर डालते हैं। आप मुझे पुलीस में नहीं दे सकते।" कहकर कृष्णदेवनारायण रास्ते में ही लोट गया। मोटरसाइकिल फटफटाती हुई पास ही आकर खड़ी हुई। पूरे यूनीफ़ार्म में एक साहब उतरकर बोले—"हाट्स-अप—whats up ?"

कृष्णदेवनारायण शिथिल चितवन से देखकर बोला—"यह तो ख़ुद मालिक ही आ गये देखते हैं। आप आने में तो टूलेट

हो गये। हमको आप पकड़ नहीं सकते अब तो। हंसराज बाबू, प्राण पर खेलते तो अच्छा था। दोनों आदमी साथ ही चले चलते। आप ऐसे आदमी को छोड़कर जाते कष्ट हो रहा है।"

इतना कहते हुए वह हँसना चाहता था; लेकिन निष्फल होकर उसने आँखें मूँद लीं। उसका मुँह एक बयक अकड़ गया। इसी समय एक लारी भरकर पुलीस के अहलकार पहुँच गये। कमिश्नर साहब ख़ुद हथकड़ी लिये हुए आगे बढ़ते हैं कि हंसराज ने कृष्णदेव के सिरहाने खड़े होकर कहा—"हथकड़ी की ज़रूरत नहीं है। असामी भाग गया।"

३

मैं और हंसराजबाबू कमरे में आमने-सामने कुर्सी पर बैठे थे। खुले जँगले से हवा और रोशनी ख़ूब आ रही थी। हंसराज बाबू बाईसिकल की घंटी हाथ में लिये हिला-डुला रहे थे। टेबुल पर एक सरकारी चिट्ठी खुले लिफ़ाफ़े में पड़ी थी।

हंसराज घंटी को खोलकर भीतर के पुर्ज़े प्रसन्न मन से देखते हुए बोले—"इस आदमी का मग़ज़ कितना तेज़ है! ऐसी कल तैयार करना तो दूर रहा, ऐसा हो सकता है यह भी किसी मस्तिष्क में नहीं आ सका था। यह जो स्प्रिङ्ग इसमें लगा देखते हो यही तो बन्दूक़ की बारूद है। इस स्प्रिङ्ग में बड़ी ताक़त है विजय! यह जो छोटा सा देखते हो यही तो इसका बैरल (नली) है। इसी के भीतर से गोली निकलती है। यह जो घोड़ा है इसके दबाते ही दो काम एक साथ होते हैं। घंटी भी बजती है, गोली भी छूटती है। घंटी की आवाज़ से ही स्प्रिङ्ग का धड़ाका ढक जाता है। याद है उस दिन की बात कि शब्द से शब्द तो ढाँका जाता है, गन्ध कैसे ढक सकता है? यह इतना बड़ा बुद्धिमान् है इसकी टोह तो उसी पहले दिन लग गई थी।"

मैंने पूछा—"अच्छा इसका पता तुमको कैसे लगा कि मार्ग का कण्टक और ग्रामोफ़ोन की ख़ूनी सूई एक ही आदमी है?"

हंसराजने कहा—"पहले तो मेरी समझ में ऐसा नहीं आया था। लेकिन क्रमशः दोनों आप ही आगे आकर एक में मिल गये। देख लो, मार्गकण्टक तो साफ़ कह रहा है कि तुम्हारे सुख-स्वच्छन्दता में कुछ बाधा-विघ्न है तो उसको दूर कर देंगे अवश्य बदले में धन लेकर। पारिश्रमिक का कुछ भी उल्लेख नहीं होने से यह थोड़े ज़ाहिर होता है कि यह आनरेरी परोपकार है। उधर ग्रामोफ़ोन की सूई को ले लो। देखो जितने आदमी इसमें मरे हैं, वे सब किसी न किसी के सुखमार्ग में काँटा बने हुए थे। मैं मरे हुए लोगों के आत्मीय स्वजनों पर कुछ इशारा नहीं करना चाहता, क्योंकि जिस बात को साबित नहीं कर सकते उसकी बात करने से कुछ फ़ायदा तो है नहीं! लेकिन इस बात पर भी ध्यान देना बहुत ज़रूरी है कि जितने मरे हैं सब के सब निपुत्री हैं। उनके वारिस कहीं तो भान्जे, कहीं भतीजे, कहीं जमाई रहे हैं। सन्तोषकुमार और उनकी उस रक्षिता से लेकर उस भतीजे, दामादों के मनोभाव से नहीं समझ रहे हो!

"हाँ, इसी से समझ में आता है कि मार्ग का कण्टक और ग्रामोफ़ोन का पिन बाहर से अलग-अलग होने पर भी इनमें जोड़ लग गया है। टूटी पथरी के दोनों टुकड़े मानों झटपट जुड़ गये हैं। एक बात पर मेरी नज़र पहले ही खिंच गई थी कि एक के नाम से दूसरे के काम का सादृश्य है। इधर मार्ग का कंटक नाम देकर विज्ञापन निकलता है और उधर रास्ते पर काँटे ही सी एक चीज़ फेंककर आदमी का ख़ून किया जाता है। यह मिलान सहज ही देखने से नहीं समझ में आता?"

मैं—समझ में आता भी होगा तो मुझे नहीं नज़र आया !

हंसराज ने तेज़ी से सिर हिलाकर कहा—"यह सब तो सहज ही अनुमान करने की बातें हैं। सन्तोष का मामला मेरे हाथ में आने पर साथ ही साथ ये सब बातें हमारे सामने आ गई थीं। समस्या यही बात जानने की आ पड़ी थी कि यह आदमी है कौन। इसी समय कृष्णदेव की अद्भुत प्रतिभा का परिचय मिला। कृष्णदेव को जिसने रुपया ख़ून करने के वास्ते दिया था, उसको भी नहीं मालूम है कि वह कौन आदमी है और किस तरह ख़ून करता है। आत्मगोपन की असाधारण क्षमता ही उसका प्रधान कर्म था। अगर वह उस दिन मेरा मन लेने समझने के लिए ख़ुद हाज़िर नहीं होता तो मैं त्रिकाल में भी उसको पकड़ सकता कि नहीं, यह मैं नहीं कह सकता। इसको साफ़ यों समझो कि तुम जिस दिन उस विज्ञापन के अनुसार ही मुक़ाम पर जाकर रोशनी के खम्भे से लगे खड़े थे उस दिन तुम्हारा भाव देखकर उसको सन्देह हुआ तो भी तुमको चिट्ठी दे गया। फिर छिपकर तुम्हारा पीछा करने लगा। जब तुम इस मकान में आये तब उसको कुछ भी सन्देह नहीं रह गया कि तुम हमारे ही दूत हो। उसको यह मालूम था कि सन्तोष का मामला हमारे हाथ में आया है। इस कारण उसको दृढ़ विश्वास हो गया कि मैं उसकी बहुत बातें जान गया हूँ। और कोई होता तो न जाने क्या करता, यह सब छोड़-छाड़कर भाग भी जा सकता था, लेकिन कृष्णदेव का कितना साहस है कि मेरा मन जानने को ख़ुद आ गया। वह यह जानना चाहता था कि मैं कहाँ तक क्या जानता हूँ और क्या

करना चाहता हूँ। उसको यहाँ आने में कुछ भी भय या ख़तरा नहीं हुआ क्योंकि कृष्णदेव ही मार्ग का कंटक वाला और ग्रामोफ़ोन पिन भी है। यह जानना मेरे लिए सम्भव भी नहीं था। और जानता तो भी प्रमाणित नहीं कर सकता था। केवल एक भूल कृष्णदेव ने की थी।"

मैं—वह क्या ?

हं०—उस दिन मैं सवेरे उसी की इन्तिज़ारी में बैठा था, यह उसको मालूम नहीं हो सका। वह खोज-ख़बर लेने आवेगा, यह मैं जानता था।

मैं—जानते थे ! तब आते ही गिरफ़्तार क्यों नहीं किया !

हं०—कैसी लड़कपन की बात करते हो विजय! उस घड़ी गिरफ़्तार करने से तो मानहानि के मुक़दमे में हर्जाना ही देना न पड़ता और क्या होता ? उस समय इसका प्रमाण क्या था कि वह ख़ूनी असामी है ? उसको पकड़ना तो मोरचे पर न चाहिए। छुरी वह चाहिए जो ख़ून लगी ही पकड़ ली जाय। इसी वास्ते खेत पर किसानी करते ही पकड़ने के लिए छाती पर प्लेट रखकर हम लोग खेल करने गये थे थोड़े। जब कृष्णदेव ने हमसे बातें करके यह समझ लिया कि मैं बहुत बातें जानता हूँ। इतना ही वह नहीं समझ पाया कि उसको भी पहचानता हूँ। इसी से उसने समझा कि अब मेरा बचा रहना खटके से ख़ाली नहीं है इसी वास्ते मुझे भी वह एक तरह से नेवता ही दे गया था। कह गया कि रात को रेसकोर्स वाले रास्ते से आना। वह जानता था कि तुम्हें भेजकर एक बार छक गया हूँ। अब मैं ख़ुद ही आऊँगा, लेकिन एक बात का

खटका उसे था कि मैं शायद पुलीस लेकर आऊँ। इसी से उसने उस घड़ी पुलीस का प्रसङ्ग छेड़ा था। लेकिन जब मैं पुलीस के नाम पर जल भुनकर सुलग उठा तब वह ख़ुश होकर उसी दम चला गया। और मुझे जमा की तरफ़ नहीं, नाम की ओर लिख ले गया।

अब कुछ देर चुप रहकर हंसराज बाबू बोले—"तुमको याद होगा जिस दिन सन्तोषकुमार पहले-पहल आये थे, उस दिन मैंने उनसे पूछा था कि जब धक्का लगा तब किसी तरह का शब्द हुआ था या नहीं? लेकिन उन्होंने उस पर उतना ध्यान नहीं दिया। वहाँ भी जोड़ा नहीं बैठा। लेकिन जब मार्गकण्टक की चिट्ठी पढ़ी तब सब मामला आईने की तरह साफ़ हो गया। तुम्हारे पूछने पर मैंने कहा था कि एक चीज़ मुझे मिली है बाइसिकल! बाइसिकल की बात क्यों उस समय तक दिमाग़ में नहीं आई यही आश्चर्य है। असल में अब विचार करने से जान पड़ता है कि साइकिल के सिवा कोई दूसरी सवारी उस काम में आ ही नहीं सकती। इसके ऐसा सुगम और आडम्बरहीन होकर ख़ून करने के लिए दूसरा उपाय ही नहीं है। तुम रास्ते से चले जा रहे हो, सामने ही एक साइकिल आ पड़ी। उसके सवार ने तुमको बचने के लिए घंटी दी और वह बगल से चला गया। तुम भी कटे पेड़ की तरह धरती में गिरकर ढेर हो गये। बाइसिकल-सवार पर किसी को सन्देह भी नहीं हो सकता; क्योंकि वह तो दोनों हाथों हैण्डल पकड़े है। कोई हथियार छोड़ेगा कैसे? उसकी ओर किसी ने आँख उठाकर देखा भी नहीं।

"एक बार पुलीस ने बड़ी बुद्धि लगाई थी। तुमको याद होगा, ग्रामोफोन पिन का अन्तिम शिकार पुलीस आफ़िस के पासवाले मोड़ पर ही हुआ था। उसी दम सबका रास्ता बन्द करके पुलीस ने वहाँ के सब आने-जानेवालों की राई-रत्ती तलाशी ली, लेकिन कुछ भी हाथ नहीं आया। मेरा विश्वास है कि कृष्णदेव भी वहीं था और उसकी भी ठीक तलाशी ली गई थी। कृष्णदेव मज़े से हँस रहा था; क्योंकि उस घड़ी साइकिल की घंटी को खोलकर देखने की सूझ किसी दारोग़ा को नहीं हुई।"

यही कहकर हंसराज बड़े ध्यान से बाइसिकल की घंटी देखने लगे। टेबुल पर का लम्बा खुला लिफ़ाफ़ा उड़कर मेरे पाँव के पास आया। उसको उठाकर टेबुल पर रखते हुए मैंने पूछा—"पुलीस-कमिश्नर क्या लिखते हैं?"

हं०—कई बातें लिखी हैं। पुलीस और सरकार दोनों ही मुझे धन्यवाद दे रहे हैं और कृष्णदेव के आत्मघात करने से लोग दुःख प्रकट कर रहे हैं। इससे तो उन लोगों को ख़ुश ही होना उचित था; क्योंकि गवर्नमेंट का बहुत कुछ ख़र्च और मेहनत बच गई। ख़ैर, चाहे जो हो; सरकार से जो पुरस्कार की घोषणा हुई थी वह तो मुझे मिलेगा ही जल्दी, इसमें तो कुछ सन्देह ही नहीं रहा। क्योंकि बड़े साहब भी जानते हैं कि हमारी अर्ज़ी तुरत मंजूर हो जायगी। उसका उपाय भी वे कर रहे हैं।

कृष्णदेव की लाश देखकर किसी ने पहचाना नहीं है। जुएल कम्पनीवाले कहते हैं कि यह उनका कृष्णदेवनारायण नहीं है और

यह भी कहते हैं कि उनका कृष्णदेव उनके काम के लिए पूना गया हुआ है। इससे जान पड़ता है कि उसका यह कृष्णदेव नाम भी नक़ली था। लेकिन इस असली-नक़ली से क्या होता है? हमारे लिए तो यह सदा कृष्णदेवनारायण ही रहेगा। चिट्ठी के अन्त में बड़े साहब ने एक सख़्त बात लिखी है कि यह घंटी वापस देना है। यह सरकार की सम्पत्ति हो गई है।

मैं—इस पर तुम्हारी ममता बहुत हो गई है न? छोड़ना नहीं चाहते!

हँसकर हंसराज ने कहा—"सच्ची बात है विजय! अगर मुझे उस दो हज़ार पुरस्कार के बदले भी यह घंटी बख़्श दी जाय तो मुझे दुःख न होगा। ख़ैर, कृष्णदेव की एक यादगार फिर भी मेरे पास रहेगी।"

मैं—वह क्या?

हं०—अरे भूल गये इतनी जल्दी! यह दस रुपये का नोट जो है। इसको फ़्रेम में मढ़ाकर रक्खूँगा। इसका दाम मेरे लिए एक सौ से भी ऊपर है।

यही कहकर हंसराज ने घंटी दराज़ में बन्द कर दी। जब लौट आये, तब मैंने पूछा—"अच्छा हंसराज बाबू, सच कहिए। आप जानते थे कि पान के बीड़े में विष है?"

हंसराज कुछ देर तक चुप रहकर बोले—"जानने और न जानने के बीच में एक जगह है जिसको सम्भावना कहते हैं।" कुछ देर बाद फिर बोले—"तुम क्या समझते हो कि कृष्णदेव साधारण ख़ूनी की तरह फाँसी चढ़ता तो अच्छा होता? मैं तो ऐसा नहीं समझता।

बल्कि मैं समझता हूँ कि इस तरह से उसका जाना ठीक हुआ। वह कितना बड़ा आर्टिस्ट था, यह वह हाथ-पाँव बँधे रहने पर भी दिखा गया है।"

मैं तो चुप रह गया। श्रद्धा और सहानुभूति कहाँ से कहाँ जाती है, यह देखने पर विस्मित होना पड़ता है।

"चिट्ठी है।" कहकर पोस्टमैन एक रजिस्ट्री दे गया। उसे खोलकर हंसराज बाबू ने भीतर से एक रंगीन काग़ज़ का टुकड़ा निकाला। उस पर एक नज़र डालकर उसे हँसते हुए मेरी ओर बढ़ाया। देखा तो बाबू सन्तोषकुमार का दस्तख़त किया हुआ एक हज़ार रुपये का बेयरर चेक है।

——

हीरक विभ्राट्

१

कुछ दिनों तक हंसराज बाबू के हाथ में कोई काम नहीं था। इस देश के लोगों में यह बुरी आदत देखी जाती है कि छोटी-मोटी चोरी आदि की वारदात तो चुपचाप सहकर हज़म कर जाते हैं, पुलीस को ख़बर ही नहीं देते। वे लोग समझते हैं कि कौन बखेड़ा करने जाय। कोई बड़ी सङ्गीन वारदात होती है तो पुलीस में ख़बर देते हैं। लेकिन गाँठ का पैसा ख़र्च करके बेसरकारी जासूस को नियुक्त करने का उद्योग या आग्रह किसी की ओर से नहीं दिखाई देता। कुछ दिन तक हाय-हाय करके पुलीस को कुवचन कहते हुए शान्त बैठ जाते हैं।

ख़ून-ख़राबी इत्यादि हमारे देश में नहीं होती, सो बात नहीं है। लेकिन उनमें बुद्धि या चालाकी का लेश भी नहीं दिखाई देता। ग़ुस्से में ख़ूनी ख़ून करता है और पकड़ जाता है। और पुलीस उसे हवालात में रखकर मुक़दमा चलाकर फाँसी दिला देती है।

इस कारण सत्य के खोजी हंसराज को सत्यान्वेषण का सुयोग जो विरला ही मिलता है इसमें आश्चर्य क्या है। यह बात सही है कि हंसराज की उधर दृष्टि नहीं थी। वे अख़बारों के पहले पृष्ठवाले

विज्ञापनों को आदि से अन्त तक पढ़ जाते थे। बाक़ी समय अपनी लाइब्रेरी में दरवाज़ा बन्द किये हुए बैठकर बिता देते थे। लेकिन मेरे लिए यह बेकारी असह्य हो रही थी। यद्यपि अपराधी का पता लगाना मेरा काम नहीं है, कहानी लिखकर हिन्दी पाठकों का चित्त-विनोद करना ही मैंने अपना जीवन-व्रत कर लिया है, फिर भी चोर-ख़ूनी के पकड़ने का एक अनुपम नशा मुझे है, इससे मैं इनकार नहीं करता। नशे की मात्रा के समान यह समय पर न मिले तो मन न जाने कैसा होने लगता है और जीवन लवणहीन व्यञ्जन की तरह जान पड़ता है।

इसी कारण मैंने उस दिन सवेरे चाय पीते समय हंसराज से कहा—"क्यों हंसराज बाबू! अब इस देश के सब चोर-बदमाश और ख़ूनी संन्यास ले चुके हैं क्या!"

हंसराज ने मुसकुराते हुए कहा—"नहीं, इसके सबूत तो अख़बारों में बराबर मिल रहे हैं।"

मैं—सो तो मिल रहे हैं, लेकिन हम लोगों के पास कोई आता कहाँ है!

हं०—आवेगा। जब मछली को चारे की ज़रूरत होगी तभी बंसी की ओर दौड़ेगी। उसको ज़बरदस्ती कोई नहीं खींच ला सकता। मालूम होता है कि तुम कुछ अधीर हो गये हो। धीरज रक्खो, धीरज! हमारे देश के पक्के हाथवाले अपराधियों का जब तक आक्रमण न हो, तब तक हम लोगों की खोज किसी को नहीं होती। पुलीस की रिपोर्ट में जो लोग दर्ज होते हैं वे चलहवा, पोठिया और गरई

या झिंगा मछली है। रोहू, मसाढ़ जल्दी पानी पर आकर चारा नहीं निगलते। अब इस देश में प्रतिभावान् बदमाश बहुत नहीं है। मैं उन भयङ्कर बुद्धिमान् बदमाशों की खोज में रहता हूँ। उन भाकुर रोहुओं को नचा-खेलाकर खींचने में ही मुझे मज़ा आता है। उन्हीं के साथ खेलने में बुद्धि का मोरचा छूटा करता है। जिस तालाब में रोहू, भाकुर रहते हैं उसी में बंसी फेकने में शिकारी को मज़ा मिलता है।

मैंने कहा—"तुम्हारी इन उपमाओं से तो हंसराज बाबू! बड़ी सड़ाँध निकल रही है। यहाँ कोई मनस्तत्त्वविद् होता तो वह बेखटके कह देता कि तुम अब सत्यान्वेषण छोड़कर जल्द मछली का रोज़गार करने लगोगे।"

हं०—ऐसा करने में मनस्तत्त्वविद् की बड़ी भूल होती विजय बाबू। जो आदमी मछली के सम्बन्ध में गम्भीर गवेषणा करता है उसने जलचर जीवों का नाम कभी नहीं सुना, यही आधुनिक समय का विधान है। तुम नवयुवक हिन्दी कहानी-लेखकगण आजकल यही प्रमाणित कर रहे हो।

मैंने क्षुब्ध होकर कहा—"हम लोग तो भाई घर का खाकर वन की भेड़ हाँकते हैं। प्रतिदान की आशा न करके केवल आनन्द सञ्चित करते रहते हैं। तब भी तुम लोगों का मन नहीं भरता। इससे और अधिक चाहो तो कुछ नगदनारायण खर्चो।"

इसी समय दरवाज़े की कुण्डी खटखटाकर 'चिट्ठी है' कहता हुआ पोस्टमैन भीतर आया। हम लोगों के जीवन में डाकिये का आगमन

इतना कम होता है कि उसके आते ही मैं साहित्यिक जीवन की दुःख-दीनता भूल गया। देखा तो एक बीमा किया हुआ लिफ़ाफ़ा हंसराज बाबू के नाम है।

लिफ़ाफ़ा फाड़कर जब हंसराज ने भीतर से माल निकाला तब मैं और भी उत्सुक हो उठा। ब्रोव्ज़ ब्लू स्याही में छपे सुन्दर मोनोग्राम-युक्त बढ़िया काग़ज़ पर लिखी चिट्ठी थी, साथ ही पिन से लगा हुआ सौ रुपये का एक नोट भी। चिट्ठी में थोड़ा ही लिखा था। पढ़कर हंसराज ने मेरे हाथ में दिया। कहा—"लो, आ गया नेवता। मादुक्षा स्टेट के नामी ज़मींदार के घर में रोयें खड़े कर देनेवाला मामला हुआ है। उसी का पता लगाने के वास्ते ज़बरदस्त तक़ाज़ा है। पत्र पढ़ते ही रवाना होने की आरज़ू है। साथ ही एक सौ रुपया राहख़र्च के लिए हाज़िर है।"

चिट्ठी के लिफ़ाफ़े पर मधाहूर स्टेट के ज़मींदार दिग्विजयसिंह बहादुर का नाम है। ख़ुद मालिक ने चिट्ठी नहीं लिखी। उनके सेक्रेटरी का टाइप किया हुआ पत्र है, जिसका मतलब यों है—

कुँवर दिग्विजयनारायणसिंह ज़मींदार मादुक्षा स्टेट की आज्ञा और आग्रह से मैं आपको यह पत्र देता हूँ। उन्होंने आपका सुयश और नाम सुना है। एक बहुत ज़रूरी काम में उनको आपकी सलाह और सहायता दरकार है। आप कृपा कर इसको पढ़ते ही आकर मिलिए। राहख़र्च के लिए एक सौ रुपये का नोट इसके साथ नत्थी है। आप किस ट्रेन से आते हैं, तार द्वारा ख़बर पाते ही स्टेशन पर कार तैयार मिलेगी। इति।

चिट्ठी से और कुछ भेद नहीं मिल सका। मैंने पढ़कर उसे लौटा दिया। कहा—"यह तो बड़ा गहरा मामला आया है भाई! काम बहुत ज़रूरी है। चिट्ठी के काग़ज़ और लिखावट से तुमको कुछ पता चला है? तुम तो इस विद्या में पारङ्गत हो!"

हं०—सो तो कुछ नहीं, लेकिन इन ज़मींदारों को जितना मैं जानता हूँ उससे यही जान पड़ता है कि पड़ोसी ज़मींदार ने उनका पाला हुआ हाथी चुरा लिया है. इसी का स्वप्न उन्होंने रात को देखा है। उसी की खोज के लिए जासूस की तलबी हुई है।

मैं—तुम भी कभी-कभी बड़ा बेसुरा अलाप लेते हो। देखते नहीं, शुरू से ही पानी की तरह रुपया बहाने लगे हैं। इसमें ज़रूर ही कुछ बहुत गहरा गोलमाल हुआ है।

हं०—यहीं तुम भूलते हो। बड़ा आदमी बीमार पड़ा है तो रोग भी बड़ा होगा। लेकिन इसका उलटा ही होते देखा जाता है। डाक्टर बुलाया जाता है। लेकिन ग़रीबों के यहाँ तो रोगी के कंठगत प्राण हुए बिना डाक्टर-वैद्य का नाम ही नहीं लिया जाता।

मैं—अच्छा! देखा जायगा। तुम क्या निश्चय करते हो! जाओगे कि नहीं!

हंसराज ने कहा—"जब हाथ में कोई काम नहीं है तब क्या हरज है। चलो, दो दिन घूम आवें। और कुछ नहीं तो सैर ही होगी। तुम तो उधर गये भी नहीं होगे।"

मेरी जाने की इच्छा सोलहों आने थी तब भी कुछ टालमटोल करने के लिए कहा—"मेरा जाना ठीक होगा! तुम्हीं को न बुलाया है।"

हं०—कुछ हर्ज नहीं। एक के बदले दो आदमी पाकर ज़मींदार साहब को ख़ुशी ही होगी। जब ख़र्च दूसरे का होता है तब सङ्कोच का क्या काम है! शास्त्र में लिखा है कि पराये पैसे पर तीर्थ-भ्रमण में कोताही क्यों करना!

किस शास्त्र में ऐसा ज्ञानगर्भ न्याय कहा गया है यह तो मैं नहीं जानता लेकिन तुरत चलने को राज़ी हो गया। उसी दिन सन्ध्या की गाड़ी से रवानगी हुई। रास्ते में कोई उल्लेख योग्य घटना नहीं घटी। गाड़ी में एक मिलनसार आदमी मिले। सेकेण्ड क्लास में हमी तीन आदमी थे। उन सज्जन के मुँह से निकला—"आप लोगों का कहाँ तक जाना होगा?"

जवाब में हंजराज ने मुसकुराकर पूछा—"और आपका कहाँ पधारना होगा?"

प्रश्न के उत्तर में प्रश्न पाकर वे महाशय कुछ रुके। फिर बोले—"मैं तो अगले ही स्टेशन पर उतर पड़ूँगा।"

उसी तरह मुसकुराहट से हंसराज ने कहा—"हम लोग उसके बादवाले स्टेशन पर उतर पड़ेंगे।"

बिना कारण झूठ बोलने की कुछ ज़रूरत तो नहीं थी, लेकिन मैंने सोचा कि हंसराज का इसमें भी कुछ मतलब होगा। मैं चुप रहा। गाड़ी ज्योंही ठहरी, वे महाशय उतर गये। रात हो गई थी। भीड़ बहुत थी। उसी में वे ग़ायब हो गये। फिर उनको नहीं देखा।

दो-तीन स्टेशन गाड़ी गई थी। मैंने खिड़की का ग्लास गिराकर बाहर सिर निकाला तो देखा कि बग़लवाले इंटर क्लास में खिड़की

से मुँह निकाले वे भलेमानस हम लोगों की ही ओर ताक रहे हैं। मेरे देखते ही उन्होंने सिर भीतर कर लिया। मैंने जोश में आकर हंसराज बाबू से कहा—"अरे यार!— "

हंसराज ने कहा—"हाँ, हाँ! जानता हूँ। वे बग़लवाली गाड़ी में जा बैठे हैं। मैंने उन्हें जितना मामूली आदमी समझा था उससे वे बहुत गहरे हैं। अच्छी बात है।"

उसके बाद मैं हर एक स्टेशन पर सिर निकालकर देखता था लेकिन उनका सिर या चुटिया कुछ भी दिखाई नहीं देता था। जब हम लोग निर्दिष्ट स्टेशन पर पहुँचे, उतर पड़े। देखा तो स्टेशन छोटा है। पता लगा कि वहाँ से छः सात मील मोटर पर जाना होगा। ज़मींदार साहब का एक आदमी क़ीमती मोटर लिये तैयार मिला। हम लोग उसका अभिवादन स्वीकार करके मोटर पर बैठे। अब मोटर चुपचाप निर्जन रास्ते पर चलने लगी। जमींदार के कर्मचारी महाशय प्रवीण निकले। हंजराज ने चतुराई से दो-एक प्रश्न पूछे। उसने कहा—"मुझे कुछ भी मालूम नहीं है सरकार! मुझे तो स्टेशन से आपको ले जाकर कोठी पहुँचाने का हुक्म है। इसी के अनुसार आपको ले चलता हूँ।" अब कुछ भी बातें नहीं हुई। बात की बात में जब ज़मींदार की ड्योढ़ी पर पहुँचे तब तो अल्लाह! रे अल्लाह—'किसी ने हज़रते सौदा को सुना बोलते यारो। अल्लाह रे अल्लाह क्या नज़में बयाँ है।'

उस मैदान में ज़मींदार साहब का राजमहल क्या बना था मानो इन्द्रपुरी आकर बसी थी। वह पँचमहली अटारी की इमारत देखते ही सिर को नज़्मा करना पड़ता था। उसके चारों ओर सौ बीघे ज़मीन पर

नन्दनकानन उतरा हुआ था । तालाब, टेनिसकोर्ट, कचहरी, अतिथिशाला (गेस्टहाउस), पोस्ट आफ़िस और न जाने क्या-क्या था । सबेरे उठते ही चारों ओर भीड़ लगी देखी । लाव-लश्कर सिपाही-पियादा, गुमाश्ता, नौकर-चाकर रिआया सब की भीड़ थी । हम लोगों की मोटर पहुँचते ही सेक्रेटरी ने बाहर आकर आदर से भीतर पधरवाया था । एक अलग महल हम लोगों के वास्ते सजाया गया था । सेक्रेटरी ने कहा—"आप लोग हाथ-मुँह धोकर कुछ जलपान कीजिए । तब तक मालिक भी तैयार हो रहे हैं, आपसे आकर मिलेंगे ।"

स्नान आदि के पश्चात् ही परातों में सजाकर नाना प्रकार का खाद्य उपस्थित किया गया । प्रसन्नता से भोग लगाकर हम लोग धूम्रपान करने लगे कि सेक्रेटरी ने आकर सम्मान से कहा—"मालिक साहब लाइब्रेरी में आप लोगों की राह देखते हैं । अगर तैयार हैं तो मेरे साथ पधारिए " हम लोग तो तैयार ही थे, उठकर साथ चलते हुए । जिस प्रकार राजमहल में जाते हैं ऐसी श्रद्धा से हम लोगों ने लाइब्रेरी के कमरे में प्रवेश किया । मालिक के नाम से लेकर आडम्बर तक सबको निरीक्षण करके उनके सम्बन्ध में जो एक गुरु गम्भीर धारणा हुई थी वह उनके सामने जाने पर एकदम दूर हो गई । देखा तो हमीं लोगों की तरह सादा पञ्जाबी कुरता पहने हैं । एक प्रसन्नमुख युवा पुरुष, गौरवर्ण सुन्दर रूप है । व्यवहार में कुछ भी आडम्बर नहीं । हम लोगों के जाते ही उन्होंने कुरसी छोड़ आगे बढ़कर नमस्कार किया । झट बोले—"आप ही हंसराज बाबू हैं । आइए, पधारिए ।"

हंसराज ने मेरा परिचय दिया। कहा—"ये मेरे प्यारे मित्र और सहकारी हैं। मेरे भविष्य जीवनी-लेखक यही हैं। इनको मैं सदा साथ लिये रहता हूँ।"

मालिक हँसकर बोले—"भगवान् करे अभी आपकी जीवनी लिखने का प्रयोजन बहुत दूर रहे। विजय बाबू के आने से मुझे बड़ी ख़ुशी है; क्योंकि इनकी लेखनी के भीतर से ही आपके नाम के साथ हम लोगों का परिचय है।"

मेरा तो रोम-रोम गद्‌गद हो उठा। दूसरे के मुख से अपने लेख का अयाचित उल्लेख कितना मधुर होता है यह छापे के अक्षरों का कारबार करनेवालों को अच्छी तरह मालूम है। मैंने समझ लिया कि ये धनी ज़मींदार होने के साथ ही सुशिक्षित, साहित्यिक और बुद्धिमान् भी हैं। लाइब्रेरी में चारों ओर नज़र डालकर देखा तो बड़ी-बड़ी आलमारियाँ दीवार से लगी खड़ी हैं, जिनमें देशी-विदेशी भाँति-भाँति की पुस्तकें भरी हुई रक्खी हैं। टेबुल पर भी अच्छी पुस्तकें पड़ी हैं। लाइब्रेरी का कमरा राजमहल की शोभा ही के लिए नहीं, यथारीति उपयोग में लाये जाने और ज्ञानार्जन के लिए है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं रहा।

कुछ देर और शिष्टता का परिचय देने पर उन्होंने कहा—"अच्छा, अब मैं काम की बात शुरू करता हूँ।" सेक्रेटरी से कहा—"अच्छा, अब तुम जा सकते हो।"

सेक्रेटरी जब धीरे से द्वार बन्द करते हुए चले गये, मालिक कुँवर साहब कहने लगे—"आप लोगों को जिस काम के लिए कष्ट दिया है

वह जैसा सङ्गीन है, वैसा ही गुप्त रखने का भी है। इस कारण सब बात सुनने के पहले मुझे वचन देना होगा कि यह बात कहीं भी किसी तरह औरों के कान में न जाने पावेगी। इतनी सावधानी इसी लिए है कि इस मामले के साथ हमारे वंश की मर्य्यादा भी जकड़ी हुई है।"

हंसराज बाबू ने कहा—"वचन देने की तो ज़रूरत ही नहीं है। एक मवक्किल की गुप्त बात किसी से कहना हम लोगों की रीति ही नहीं है। लेकिन आप जब वचन लेना चाहते हैं तो देने में भी हमको कुछ सङ्कोच नहीं। किस तरह से वचन देना होगा, कहिए।"

कुँवर साहब ने हँसकर कहा—"तुलसी-गङ्गाजल लेकर क़सम खाना नहीं होगा। आपके मुख से वचन मिलना ही यथेष्ट है।"

हं०—तो क्या गप हाँकने में कोई बात कहना मना है?

मज़बूती से कुँवर साहब ने कहा—"नहीं, इस विषय की कुछ भी चर्चा या आलोचना अभीष्ट नहीं है।"

एक मज़ेदार कहानी लिखने का मसाला हाथ से छूटता देखकर भी हंसराज बाबू ने कहा—"अच्छा, आप बेखटके कहिए; हम लोग कोई भी बात कहीं किसी तरह नहीं प्रकट होने देंगे।"

अब कुछ देर कुँवर साहब यह सोचते रहे कि कहाँ से आरम्भ करें। फिर बोले—"हमारे वंश में जो हीरे-जवाहरात पुश्तैनी चले आते हैं उनकी बात तो आप लोग कुछ नहीं जानते हैं न?"

हं०—कुछ-कुछ मालूम है। आपके यहाँ एक हीरा है जिसके समान हीरा बम्बई प्रेसीडेंसी में कहीं नहीं। उसका नाम छत्रपति हीरक है।

आग्रह से कुँवर साहब बोले—"आप जानते हैं। तब तो यह भी जानते होंगे कि यहाँ जो अखिल-भारतीय रत्नप्रदर्शिनी हुई थी, उसमें वह दिखाया गया था।"

हंसराज ने सिर हिलाकर 'हाँ' करते हुए कहा—"जानता हूँ। लेकिन संयोग की बात है, मैं उसको उस अवसर पर देखने का मौक़ा नहीं पा सका।"

कुछ देर रुककर कुँवर साहब बोले—"वह मौक़ा अब आवेगा या नहीं, मैं नहीं कह सकता। वही हीरा चोरी गया है।"

हं०—चोरी गया है!

कुँ०—जी हाँ। उसी के लिए आपको कष्ट दिया है मैंने। मैं सब घटना आदि से कहता हूँ, सुन लीजिए पहले। आप ज़रूर जानते होंगे कि हमारा यह बुनियादी ख़ानदान बहुत प्राचीन काल से चला आता है। बहुत पुरानी बात है। मुग़ल बादशाहों की अमलदारी में हमारे पुरखों ने यह ज़मींदारी पाई थी। असल बात यह है कि वे डाकुओं के सरदार थे। अपने बाहुबल से बहुत सी दौलत पैदा करके वे बादशाह के यहाँ पहुँचे। वहाँ से भी उनको सनद मिल गई। वह सनद अभी तक हमारे पास है। अब तो हम लोग तबाह हो गये हैं। पहले की बात ही नहीं रही, नहीं तो हम लोगों को राजा की उपाधि थी। यह छत्रपति हीरा हमारे पूर्वजों के पास पीढ़ी-दरपीढ़ी से बरा-

घर चला आता रहा है। हमारे वंश में यह बात मशहूर है कि जब तक यह हीरा रहेगा, तभी तक हमारा वंश है और तब तक हमारे वंश का बाल भी बाँका नहीं होगा। जब वह हमारे घर से निकल जायगा, तब आगे वंश नहीं चलेगा। उसी पीढ़ी से वंश का लोप हो जायगा।

कुछ देर ठहरकर फिर कुँवर साहब कहने लगे—"ज़मींदार का बड़ा बेटा ही ज़मींदारी का उत्तराधिकारी होता है। यह हमारे वंश की पुरानी परम्परा है। छोटे लड़के अपने गुज़ारे को पाते हैं। इसी नियम से, दो बरस हुए, मुझे इस इलाक़े का हक़ मिला है। मैं अपने पिता का एकलौता हूँ। मेरे एक काका हैं, जिन्हें मासिक तीन हज़ार ख़र्च मिलता है। यह तो हमारी इस घटना की भूमिका हुई। अब उस घटना को सुन लीजिए। हीरे के लिए जब रत्न-प्रदर्शिनी का निमंत्रण आया तब मैं ख़ुद स्पेशल ट्रेन से उसको लेकर गया। प्रदर्शिनी के अधिकारी को हीरा सौंप देने पर मैं निश्चिन्त हुआ। आपको तो मालूम ही है, उस प्रदर्शिनी में हैदराबाद-निज़ाम, बड़ोदा, पटियाला, कपूरथला आदि बड़ी बड़ी रियासतों के ख़ानदानी हीरे प्रदर्शन के लिए आये थे। प्रदर्शिनी के सब कर्तृत्वाधिकार गवर्नमेण्ट के अधीन थे, इस कारण वहाँ से हीरा चोरी जाने का तो कुछ भय था नहीं। इसके सिवा जिस केस में हमारा हीरा रक्खा था, उस ग्लास-केस की चाभी मेरे पास ही थी। सात दिनों तक प्रदर्शन होता रहा। मैं आठवें दिन अपना हीरा लेकर घर लौट आया। घर आने पर मालूम हुआ कि मेरा हीरा

चोरी चला गया है। उसकी जगह पर जो हीरा मुझे मिला है वह नक़ली है—केवल दो सौ रुपये का माल।"

कुँवर साहब जब चुप हुए, हंसराज बाबू ने पूछा—"अच्छा, चोरी की ख़बर जब आपको मिली तब आपने प्रदर्शिनी के अधिकारी या पुलीस को ख़बर क्यों नहीं दी?"

कुँ०—ख़बर देने से कुछ काम बननेवाला नहीं था; क्योंकि चोरी के साथ ही मालूम हो गया कि किसने चोरी की है।

"ओहो।" कहकर हंसराज तेज़ नज़र से कुँवर की ओर ताकते रहे, फिर बोले—"अच्छा, कहते चलिए।"

कुँवर साहब कहने लगे—"यह बात किसी से कहने की नहीं है। पीछे मालूम होने पर पारिवारिक कलङ्क ज़ाहिर हो पड़ेगा और अख़बारों में हलचल मच जायगी, कालम पर कालम रँगे जाने लगेंगे। आप तो जानते ही हैं भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अपने अन्धेरनगरी नाटक में चूरनवाले से कहलाया है—'चूरन खायें एडिटर जात—जिनके पेट पचे नहिं बात।' इसी डर से सोच-विचारकर मैंने यह बात किसी को जानने नहीं दी। मैं जानता हूँ या मेरा बूढ़ा दीवान जानता है, किसी तीसरे को इसकी ख़बर नहीं है।

"मैं आपको सब बात समझा देना चाहता हूँ। पहले मैं बतला चुका हूँ कि मेरे एक काका हैं, वे बम्बई में रहते हैं। स्टेट से वे तीन हज़ार मासिक गुज़ारे को पाते हैं। उनका नाम आप लोगों ने सुना ही होगा। बम्बई में प्रधान आर्टिस्ट राजा दीनदयाल एण्ड सन्स लि० के वे नामी अधिकारी अर्थात् बहुत बड़े हिस्सेदार हैं। नाम उनका

सर सर्वविजयनारायण सिंह है। उनके ऐसा शिल्पचतुर वैज्ञानिक अगर विलायत में पैदा होता तो बड़ा सुयश पाता। गत जर्मन महासमर में उन्होंने प्लास्टर आव पेरिस के सम्बन्ध में एक नवीन तथ्य आविष्कार करके गवर्नमेण्ट को प्रेज़ेंट किया था। इसी कारण उनको सर की उपाधि दी गई थी। जैसे वे असाधारण बुद्धिमान् हैं वैसे ही उनका पाण्डित्य भी ख़ूब है। शिल्प में भी वे बड़े निपुण हैं। पेरिस की आल वर्ल्ड शिल्प प्रदर्शिनी में महादेव की मूर्त्ति एक्ज़िबिट करके उन्होंने जो बड़ाई पाई है वह समस्त भारतवर्ष में विदित है। ऐसी बहुमुखी प्रतिभा दर्शन को भी नहीं मिलती।"—कहकर कुँवर साहब ने हँस दिया।

हम लोग और ठीक होकर बैठे। कुँवर साहब कहने लगे—"काकाजी हमारे ऊपर बड़ा स्नेह करते हैं, लेकिन एक ही बात में हमारे उनके बीच मतभेद है। उन्होंने एक बार वह हीरा हमसे माँगा था। हीरे पर उनकी बड़ी आसक्ति थी। वह इसलिए नहीं कि वह बड़ा दामी है, बल्कि इसलिए कि वह मङ्गलकारी है। वे उसे अपने पास रखने के लिए बहुत ही जी-जान से उत्सुक थे।"

मैंने पूछा—"वह हीरा कितने दाम का था?"

कुँवर साहब मुसकराते हुए बोले—"उसका दाम तो मैंने कभी किसी जौहरी से आँकने को कहा ही नहीं। और दाम देकर उसको ख़रीदनेवाले आदमी इस देश में हैं भी नहीं। गृहदेवता की तरह उसकी मर्यादा हम लोग करते आये हैं। दाम उसका

लगवाना हम लोग उचित नहीं समझते। वह तो अनमोल पदार्थ है।"

कुँवर साहब फिर कहने लगे—"जब मेरे पिता जीवित थे, तब भी काकाजी ने उनसे हीरा माँगा था। उन्होंने नहीं दिया। बाद को जब पिताजी मर गये तब काकाजी ने मुझसे भी माँगा और कहा—'मुशाहरा मैं नहीं चाहता, हीरा ही मुझे दे दो।' बात यों थी कि पिताजी ने मरते समय मुझे सावधान कर दिया था, इसी से मैंने विनती की कि काकाजी और चाहे जो आप ले लें, लेकिन यह हीरा तो नहीं दे सकता। पिताजी की मरते समय की आज्ञा है। काकाजी मुँह से कुछ बोले तो नहीं लेकिन मालूम हो गया कि मेरे ऊपर जी से कुढ़ गये हैं। उसके बाद काका जी से मेरी कभी भेंट ही नहीं हुई!

"लेकिन चिट्ठी-पत्री हुई है। जब मैं प्रदर्शिनी से लौट आया, उसके दूसरे दिन काकाजी की चिट्ठी आई। चिट्ठी तो छोटी ही थी लेकिन पढ़ने पर ही सिर चकरा गया। देखिए यही है वह चिट्ठी।"

इतना कहकर कुँवर साहब ने दराज से चिट्ठी निकालकर दी। छोटे-छोटे सुन्दर अक्षर थे। उसमें लिखा था—

"चिरंजीव बच्चा! रंज मत होना। तुमने दिया नहीं, इसी से मैंने ख़ुद हीरा ले लिया। वंशलोप होने की जो बात है उस पर तुम विश्वास मत करना। यह हमारे पुरखों का फन्दामात्र है कि कोई उसे हटाने की हिम्मत न करे। मेरा आशीर्वाद और प्यार! तुम्हारा काका—

सर्वविजय।"

जब चुपचाप पढ़कर हंसराज ने चिट्ठी लौटा दी, तब कुँवर साहब कहने लगे—"मैं चिट्ठी पढ़ते ही तहख़ाने को दौड़ गया। तिजोरी खोलकर देखा तो ठीक हीरा ज्यों का त्यों रक्खा है। दीवानजी को बुलाया। वे बड़े निपुण जौहरी हैं, देखते ही उन्होंने कहा कि यह नक़ली हीरा है। लेकिन असल-नक़ल में कुछ अन्तर नहीं, ठीक उसी का जोड़ा है।"

कुँवर साहब ने बक्स खोलकर एक मख़मली केस निकाला, उसका ढकना उठाते ही एक सुपारी के बराबर गोल हीरा चमक उठा। कुँवर साहब ने दो उँगलियों से उठाकर उसको हंसराज बाबू के हाथ में दिया। कहा—"निपुण जौहरी के सिवा दूसरे की मजाल नहीं कि इसे नक़ली हीरा समझे। इसका दाम दो सौ रुपया से अधिक नहीं है।"

हम लोगों ने बड़े ध्यान से उस नक़ली हीरे को देखा, फिर हंसराज बाबू ने लौटाकर कहा—"तो असल हीरे की खोज करना ही हमारा काम है ?"

स्थिर दृष्टि से कुँवर साहब हंसराज बाबू की ओर देखते हुए बोले—"हाँ! हीरा कैसे कब चोरी गया इसके लिए मायापच्ची करने का हमको कुछ काम नहीं है। हमको अपना हीरा मिल जाय इतने ही से मतलब है। चाहे जैसे हो, जिस तरह से हमारा छत्रपति हीरक हमको मिल जाय, इसके वास्ते ख़र्च की कुछ चिन्ता न करें। आप चाहें तो मैं पचास हज़ार से एक लाख तक देने को तैयार हूँ। लेकिन शर्त यह है कि किसी तरह इसकी ख़बर अख़बार में न छपे।"

लापरवाही दिखाकर हंसराज ने पूछा—"अच्छा, कब तक आप हीरा पावेंगे तो ख़ुश होंगे?"

उत्साह से कुँवर साहब का मन भर उठा। उमङ्ग में आकर बोले—"तो क्या आप समझते हैं कि हीरा ज़रूर मुझे ला दे सकेंगे?"

हंसराज बाबू हँस पड़े। बोले—"यह तो बिलकुल सीधा-सादा मामला है। मैं तो इसको बहुत गहरा सङ्गीन मामला समझता था। ख़ैर, आज सोमवार है। अगले सोमवार तक आपका हीरा आपको मिल जायगा।"

अब हंसराज बाबू उठ खड़े हुए।

२

लौट आने पर पहला दिन तो यों ही बीत गया। दूसरे दिन रात का भोजन करके जब दोनों आदमी बैठे तब मैंने पूछा—"कुछ रास्ता ठीक किया ?"

हं० नहीं। पहले मकान देख लें, तब प्लान ठीक करना होगा।

मैं—तो क्या समझते हो कि हीरा घर ही में है ?

हं०—ज़रूर। जिस चीज़ के वास्ते चाचाजी ने उतरती उम्र में भतीजे की सम्पत्ति चुराई है उसको वे क्षण भर भी अपने पास से हटने नहीं देंगे। हम लोगों को जानना इतना ही है कि उन्होंने उसे कहाँ रक्खा है। मेरा तो विश्वास है ......"

मैं—क्या विश्वास है ?

हं०—जाने दो, वह केवल अनुमान है। उस बूढ़े काका से जब तक भेंट न हो, तब तक कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता।

कुछ देर तक चुप रहकर मैंने कहा—"हंसराज बाबू, इस काम के नैतिक पहलू पर तो विचार किया जाय।"

हं०—किस काम के ?

"जिस उपाय से तुम हीरे का पता लगाने जा रहे हो।"

हं०—मैं सब विचार चुका हूँ। यह तो साफ़ चोरी का मामला है, पकड़े जाने पर ही जेल रक्खा हुआ है। लेकिन सब चोरियाँ नैतिक

अपराध में नहीं गिनी जातीं। चोर के ऊपर डाका डालना महापुण्य कार्य्य होता है।

मैं—यह मैंने समझा, लेकिन इस देश का क़ानून तो यह बात नहीं न सुनेगा?

"वह सब मैं नहीं सोचता" कहकर हंसराज बाबू चुप हो रहे। दूसरे दिन पहर दिन चढ़े वे अकेले बाहर गये। जब लौटे तब दिन डूब रहा था। हाथ-मुँह धोकर जब कुछ खाने बैठे, मैंने पूछा—"कहाँ तक कर आये?"

हंसराज बाबू ने लापरवाही से रसगुल्ला तोड़ते हुए कहा—"अभी कुछ कहने लायक़ काम तो नहीं हुआ है। बुढ़वा पुराना घाघ है। उसका एक नेपाली नौकर है। उसकी आँखें हैं, ठीक शिकारी बनबिलाव की तरह की। एक बात कुछ मौक़े की आई है। बुढ़ऊ दादा कोई एक प्राइवेट सेक्रेटरी ढूँढ़ रहे हैं। दो अर्ज़ियाँ मैं भी दे आया हूँ।"

मैं—सब साफ़ खोलकर कहो यार! पहेली छोड़ो।

तश्तरी ख़ाली करके हंसराज ने नीचे रख दी। रूमाल से मुँह पोंछते हुए उन्होंने कहा—"कुँवर साहब ने जो कुछ कहा था, वह बिलकुल झूठ नहीं है। बुढ़वा है पक्का आदमी। उसके कमरे की सब सजावट देखने पर उसको एक क़ीमती चीज़ों का अजायबघर कहना अनुचित नहीं होगा। वे देवता रहते तो हैं अकेले, लेकिन उनके अनुगत और विश्वासी नौकर-चाकर, लाव-लश्कर बहुत हैं। पहले तो अहाते में घुसना ही बड़ा कठिन है। फाटक पर चार द्वारपाल

बन्दूक लिये बैठे हैं, कोई भीतर जाना चाहे तो तरह-तरह के सवालों से नाकोदम कर देते हैं। चहारदीवारी फाँदकर भी घुसने को जगह नहीं है। तेरह फ़ुट ऊँची चहारदीवारी पर काँटेदार तार लगे हैं। किसी तरह दरवाज़े के पहरेदारों की चापलूसी करके अगर भीतर गये भी तो अन्दर महल के सिंहद्वार पर गोरखा लाल बहादुरसिंह थापा बाघ की तरह मूँछें मरोड़ता हुआ बैठा है। अगर उसके सवालों का ठीक जवाब नहीं मिला तो भीतर जाने की आशा की इतिश्री यहीं हो जायगी। रात की व्यवस्था और भयावनी है। इन सिपाहियों और पहरेदारों के सिवा चार फाक्सटेरियर (कुत्ते) छुटे रहते हैं। उनके सिवा एक बुलडाग गले में ऐसी साँकल लिये बैठा रहता है कि एक ही कुलाँच में तोड़कर टूट पड़ेगा। इस कारण रात को भी कोई घुसकर अपना काम नहीं कर सकता।"

मैं—तब उपाय क्या है?

हं०—उपाय तो किया ही है। पहरा कितना ही कड़ा हो, जाने-वाले को मार्ग मिल ही जायगा। बुढ़ऊ को एक सेक्रेटरी चाहिए। डेढ़ सौ रुपया महीना मिलेगा। घर ही में रहना होगा। विज्ञान-शास्त्र का जानकार हो। शार्टहैण्ड, टाइपराइटिङ्ग और कई ऐसे ही गुण चाहिएँ। मैं उसी विज्ञापन पर दो आवेदनपत्र दे आया हूँ। कल भेंट करने की बात है।

मैं—दो किस वास्ते?

हं०—एक अपने लिए, दूसरा तुम्हारे लिए। एक फ़ेल होगा तो दूसरा पास तो रक्खा ही है।

दूसरे दिन हम दोनों आदमी सर सर्वविजय की ड्योढ़ी पर सेक्रेटरी पद के प्रार्थी होकर आठ बजे पहुँच गये। दरबानों और सिपाहियों की दरबारदारी करने के बाद जब भीतर बरामदे में दाखिल हुए तो देखा कि वहाँ हम लोगों की तरह कई गण्डे लोग नौकरी पाने की अभिलाषा से आ जुटे हैं। हम लोग भी उनमें जा बैठे। लेकिन यह किसी तरह ज़ाहिर नहीं होने दिया कि हम दोनों में कभी की कुछ जान-पहचान है।

मालिक एक कमरे में बैठकर सबके सवाल सुनने और सबको फ़ेल करके विदा करने लगे। हमको खटका हुआ कि कहीं हम लोगों से पहले कोई बहाल हो गया तो सब मामला उलट जायगा; लेकिन सब के सब चेहरे पर निराशा लिये हुए विदा हुए। अब दो ही आदमी रह गये, एक मैं और दूसरे हंसराज बाबू; लेकिन प्रार्थनापत्र में मेरा नाम हरभजन हुआ और हंसराज का दुःखहरन। मुझे नाम भूलने का डर था, इस कारण अपना हरभजन नाम कुछ देर से भज रहा था। इसी समय नौकर ने आकर पुकारा। उसने कहा—मालिक दोनों आदमियों को एक साथ पुकारते हैं। मेरे मन में विस्मय हुआ। क्या कारण है, दोनों की पुकार एक साथ क्यों हुई! लेकिन चुपचाप दोनों आदमी एक साथ मालिक के सामने पेश हुए। देखा तो बड़े हाल में आप सेक्रेटरियट टेबुल के पास कुर्सी पर विराजमान हैं।

शरीर विशालकाय है। चेहरा देखने से भाकुर (= बड़ी मछली) की तरह भयङ्कर है। दाढ़ी-मूछ के आधे सफ़ेद, और आधे काले बालों से भयावना रूप बना है। सिर काली हाँड़ी

की तरह, ललाट के सामने खल्वाट् हो गया है। भारी शरीर और बड़े मस्तक के बीच में गर्दन ग़ायब हो रही है। बड़े बड़े रोओं से भरी दोनों बाँहों का भीषण रूप है। उनके छोर पर उँगलियाँ मानो खोंस दी गई हैं। छोटी-छोटी आँखें सदा लड़ने के लिए प्रतिद्वन्द्वी की खोज में चञ्चल हो रही हैं। संक्षेप में अलिफ़-लैला के दैत्य की तरह का रूप देखकर बड़ा भय लगता है। जान पड़ता है, इस शरीर के भीतर भले-बुरे सब कर्मों की शक्ति मौजूद है।

हम लोग विनीत अभिवादन करके टेबुल के सामने जा खड़े हुए। तब वे आँखें हमारे ऊपर, फिर हंसराज पर, फिर हमारे ऊपर इस तरह घूम फिरकर फिर हंसराज पर जा टिकीं। और साथ ही उस भयङ्कर मुँह पर मुसकुराहट फूट पड़ी। ऐसे भयङ्कर मुँह का जानवर अगर हँस सकता है तो ऐसा ही हँसता होगा। अब वह हँसी बात की बात में विलीन हुई। बड़े गम्भीर स्वर में कहा गया—"लाल थापा, दरवाज़ा बन्द करो।"

द्वारपाल थापा ने दरवाज़ा बन्द कर दिया। अब मालिकराम ने दोनों प्रार्थनापत्र हाथ में लेकर पूछा—"दुखहरन किसका नाम है ?"

हं०—मेरा।

"हाँ! तुम्हारा नाम दुखहरन और इनका हरभजन। दोनों ने सलाह करके अर्ज़ी भेजी है!"

हं०—नहीं, मैं तो इनको पहचानता ही नहीं।

मालिक ने कहा—"पहचानते नहीं! हो सकता है। लेकिन मैंने तो दोनों की अर्ज़ी पढ़कर दूसरा ही समझा था। ख़ैर, तुमने एम० एस्-सी० पास किया है ?"

हं०—जी हाँ।

"किस यूनीवर्सिटी से ?"

हं०—"बम्बई यूनीवर्सिटी से"।

"हूँ !" कहकर उन्होंने एक मोटी सी पुस्तक उठाई और पन्ना उलटते हुए बोले—"किस साल पास किया था ?"

मैंने देखा तो वह यूनीवर्सिटी का कलेण्डर है। मेरा तो कलेजा दहल गया। समझा कि सब जाल खुलता है !

हं०—इसी वर्ष, कई महीने हुए रिज़ल्ट निकला है।

अब धीरज आया। इस साल के पास हुए छात्रों का नाम अभी इसमें आया नहीं है। निदान कलेण्डर रखकर उन्होंने और कई सवाल किये, लेकिन बुढ़ऊ हंसराज को फ़ेल नहीं कर सके। फिर शार्टहेण्ड की परीक्षा में भी हंसराज पास हो गये। अब मालिक ने कहा—"अच्छी बात है, तुमसे हमारा काम हो सकता है। बैठ जाओ।"

हंसराज बाबू जब बैठ गये तब मालिक कुछ देर तक त्योरियाँ चढ़ाये टेबुल की ओर देखते रहे। फिर मेरी ओर ताककर बोले—"अच्छा विजय बाबू !"

"जी।"

अब तो मालिक का ठहाका ऐसा जान पड़ा जैसे दिल्ली-दरबार के जुलूस में लार्ड हार्डिङ्ग पर बम पड़ा था। मालिक का तो हँसते-हँसते पेट बड़े ज़ोर से दलकने लगा। वे गिर-गिरकर सम्हलने लगे। देखता हूँ तो हंसराज बाबू मेरी ओर वक्र दृष्टि से देख रहे हैं। लज्जा और ग्लानि के मारे मैं तो वहीं गड़ गया।

मालिक काका बुढ़ऊ के हँसने का अध्याय जल्दी समाप्त नहीं हुआ। दीवार कँपाकर वे पाँच मिनट तक लहालोट हुए दलकते रह गये। फिर आँखें पोंछकर मेरी ओर देखते हुए बोले—"लजाओ मत मेरे सामने। पकड़ जाने से तुमको बहुत शरमाने की ज़रूरत नहीं है। तुम लोग अभी बच्चे हो, इसी उम्र में इतनी ढिठाई करके जो तुम लोग हमसे चाल चलने चले हो, इसी से मुझे बड़ा मज़ा आ रहा है। फिर हंसराज बाबू की ओर कुछ देर तक देखकर बोले—"तुम तो हंसराज बाबू ऐसे पोंगादास निकले कि क्या कहें। तुम्हारे ऐसे आदमी से इतनी नासमझी होगी, यह मैं कभी सपने में भी आशा नहीं कर सकता था। तुम अभी लड़के तो हो, लेकिन ललाट और चेहरे से मालूम होता है कि बुद्धिमान् और ख़ूब चतुर हो।" फिर आप ही बड़बड़ाने लगे—"तुम्हारी खोपड़ी में देखते हैं कम से कम पैंसठ आउंस ब्रेनमैटर है, लेकिन ब्रेनमैटर रहने से ही क्या होगा। इन सबको अनुभव दरकार होता है। कन्धा ऊँचा, ललाट उन्नत है, मृदङ्ग मुख, नाक टेढ़ी है सही, इससे तुम त्वरितकर्मा और कूटबुद्धि में निपुण हो। दोनों गुण एक साथ हैं, अन्तर्ज्ञान अधिक है लेकिन रीज़निङ्ग पावर कम है। अभी पका डेवलप नहीं हुआ है, अभी ख़ूब पुष्ट होने में देर है। सबके बाद सारांश यह कि बुद्धि की गुम्फनिका अच्छी है। बुद्धिमान् कहे जा सकते हो।"

हम दोनों कुछ देर तक अवाक् बने रहे। मेरे मन में आया कि हंसराज बाबू का जीतेजी पोस्टमार्टम हो रहा है। उनका सिर

काटकर मग़ज़ चीर फाड़कर असली दाम आँका जा रहा है। और मैं खड़ा यह सब देख रहा हूँ।

अब मालिक ने खुलकर कहा—"मेरी खोपड़ी में कितना मस्तिष्क है, जानते हो! पूरे बहत्तर औंस! तुमसे सात औंस अधिक है। मतलब यह कि बनमानुस और साधारण मनुष्य की बुद्धि में जितना अन्तर होता है, उतने से भी अधिक तुममें और हममें है।"

हंसराज बाबू वहाँ चुपचाप बैठे रहे। अभी मुखमण्डल पर कुछ भी परिवर्त्तन दृष्टिगत नहीं हुआ। फिर मालिक ठठाकर हँसे और बोले—"बच्चाजी ने तुमको एक चीज़ चुराने के लिए यहाँ भेजा है। तुम कर सकोगे यह काम?"

हंसराज बाबू ने शान्त भाव से कहा—"मैं कुँवर साहब को सात दिन में उनकी चीज़ लौटा देने का वचन देकर आया हूँ।"

इतना सुनने पर तो काका सर सर्वविजयजी का भयङ्कर मुँह और भयङ्कर हो उठा। दोनों भवें स्फीत हो उठीं। बोले—"तब बड़ी हिम्मत की है तुमने। लेकिन तुम इसको पूरा कैसे करोगे? किस रास्ते से चलोगे, सो तो सुनें! अभी तो गर्दनिया देकर तुम्हें हाते से बाहर करा दूँगा, फिर क्या करोगे?"

हं०—आपकी बात से इतना तो पता चल गया कि हीरा घर ही में है।

लाल होकर काका जी बोले—"सो तो है लेकिन तुम उसको ढूँढ़ लोगे? इतनी बुद्धि तुम्हारी खोपड़ी में है?"

हंसराज बाबू ने जवाब में हँस दिया। मेरे मन में आया कि अब कोई भयङ्कर घटना हुआ चाहती है। मालिक के माथे की नसें फूलने

लगीं, दोनों आँखें हिंसा से जल उठीं। हाथ के पास कोई हथियार रहता तो अब तक हंसराज बाबू पर चल चुका होता, इसमें कुछ सन्देह नहीं रहा। लेकिन ख़ुशी की बात यह कि उस समय वह नहीं था। सिंह जैसे केसर तनतनाकर कपार ऊँचा करता है वैसे तमककर बोले—'अच्छा हंसराज बाबू! तुम तो अपने को बड़ा बुद्धिमान् लगाते हो। समझते हो कि तुम्हारे ऐसा डिटेक्टिव दुनिया में हुई नहीं। तुम जासूसों के शिरोमणि होने का दावा करते हो। अच्छी बात है, मैं तुमको यहाँ से गरदनिया देकर निकालूँगा नहीं। हाते भर में तुमको बेरोक विचरने का अधिकार देता हूँ। अगर शक्ति है, बुद्धि है, तो ढूँढ़कर निकाल लो वह हीरा। सात दिन का तुमने वादा किया है। सात बरस की तुम्हें मैं मुहलत देता हूँ। जाओ, ढूँढ़कर निकाल लो।"

यही कहकर मालिक गरज उठे—"लाल थापा!"

लाल बहादुर थापा छुटते ही सामने आया। उसको हुक्म दिया—"देखो थापा! तुम इन दो बाबुओं को पहचान लो। हम रहें चाहे न रहें, हाते भर में कहीं इनकी रोक-टोक मत करना। ये जहाँ जब चाहें जावें। जाओ!"

लाल थापा अपनी छोटी आँखें हम लोगों की ओर गड़ाकर "जो हुकम सरकार" कहकर वहाँ से चलता हुआ।

अब मालिक मैनाक पर्वत की तरह सगबगाकर हँसते हुए बोले—"जाओ ढूँढ़ो हंसराज सिंह! 'जिन खोजा तिन पाइयाँ' का भरोसा नहीं करना समझे!"

हंसराज ने कहा—"सिंह नहीं। ख़ाली हंसराज।"

मा०—नहीं तो न सही लेकिन तुम खोजते-खोजते बूढ़े होकर मर जाओगे तब भी उस चीज़ को पा नहीं सकते। समझ में आ गया। ईंजानिब जिस चीज़ को छिपाकर रक्खें उसको ढूँढ़कर निकाल लेना हंसराज का काम नहीं है। अच्छा जाओ, लोहे की आलमारी, तिजोरी जो चाहो देखो। जिसकी जब ज़रूरत हो उसकी चाभी माँग लेना। उनमें बहुत क़ीमती चीज़ें रक्खी हैं, दूसरे किसी को उन्हें देखने की परवानगी नहीं; लेकिन मैं तुम्हारा विश्वास करता हूँ। अब मैं अपने स्टूडियो को जाता हूँ। अब मुझे तकलीफ़ मत देना। हाँ, एक बात के लिए ख़बरदार कर देना चाहता हूँ। इस कोठी में बहुत दामी तस्वीरें और स्टेचू भी हैं, प्लास्टर की मूर्तियाँ भी पड़ी हैं, तुम अपने हीरे खोजने की धुन में उनको तोड़-फोड़कर ख़राब नहीं करना। अगर ऐसा करोगे तो ख़बर पाते ही मैं तुमको निकाल बाहर कर दूँगा। फिर जो अधिकार तुमको बख़्शे गये हैं वे छीन लिये जायँगे।

यही सब कहने के बाद मालिक काका वहाँ से उठकर चले गये।

३

अब हम लोग आमने-सामने बैठे आपस में कुछ देर तक मुँहतकौअल करते रहे। मालिक की बातों के मारे हंसराज बाबू को भी भीतर ही भीतर ख़ूब विरक्ति हुई थी। फिर सूखी हँसी हँसकर बोले—"चलो अब डेरे को चलें। आज तो कुछ होना है नहीं।"

दूसरे को ठगने जाकर आप ही ठगे जाने पर जो लज्जा या ग्लानि होती है उसके समान और लज्जा कहाँ होगी? उसी का धक्का खाकर ग्लानि लिये हुए हम लोगों ने डेरे का रास्ता लिया। जब घर पहुँचे तब चाय-पानी करके सुस्थिर हुए।

मैंने हंसराज से कहा—"क्यों हंसराज बाबू, आज तो हमारी ही नासमझी और जल्दबाज़ी से सब चौपट हो गया।"

हं०—नासमझी और जल्दबाज़ी तुमने की है ज़रूर, लेकिन उससे बहुत अधिक हानि नहीं हुई। यह बूढ़ा पहले से सब जानता था। तुमको गाड़ीवाले उस भले आदमी की बात याद है जो अगले स्टेशन पर उतर जायँगे कहकर दूसरी गाड़ी में जा बैठा था। वह इसी बूढ़े देवता का गुप्तचर था। यह बूढ़ा हम लोगों की नस-नस जानता है।

मैं—इसने तो अच्छा बन्दर बनाकर हम लोगों को झकझोर दिया और जब तक रहा नचाता रहा। ऐसा तो कभी किसी से हम लोगों का पाला नहीं पड़ा था।

हंसराज बाबू कुछ देर चुप रहकर बोले—"बूढ़े की इसी दुर्बलता से हम लोग बचकर लौट आये हैं; नहीं तो आज ख़तमाख़तमी का मामला था।"

मैं अब सीधा होकर बैठ गया। पूछा—"कैसी दुर्बलता कहते हो? तुमको क्या अभी कुछ आशा है?"

"आशा तो पूरी है। लेकिन अगर बुढ़वा सचमुच गर्दनियाँ देकर निकाल देता तो नहीं कह सकते कि क्या होता। ख़ैर, अब इस बूढ़े की एक कमज़ोरी का पता मिल गया है, तब इसी से काम फ़तेह करना होगा।"

मैं—कौन सी कमज़ोरी का पता लगा है, सुनें तो सही। मुझे तो कहीं ज़रा भी कुछ सन्धि नहीं मिली। एकदम लोहे की तरह सख़्त और ठोस है।

"लेकिन जो छेद है वह ख़ूब बड़ा है। उसी की राह हम लोग भीतर घुसे हैं। नहीं मालूम क्यों बड़े-बड़े लोगों में भी यह कमज़ोरी बहुत दिखाई देती है। जिसको जितनी ही बुद्धि है उसको अपनी बुद्धि का अहंकार उससे चौगुना होता है। इसका नतीजा यह होता है कि उस बुद्धि का कर्तृत्व अहंकार की निकृष्टता में नष्ट हो जाने के कारण बुद्धि से कुछ नहीं होता।"

मैं—अब पहेली तो बुझाओ मत, साफ़ बात कहो साफ़।

हं०—इस बूढ़े की बड़ी कमज़ोरी है अपनी बुद्धि का अहंकार। यह दोष मैंने शुरू में ही समझ लिया था। इसी कारण उस अहंकार पर आघात करके मैंने अपना काम निकाला है। अब जब

भीतर घुस चुके हैं तब आठ आना काम तो समझ लो कि हो चुका है, बाक़ी रह गया केवल हीरा ढूँढ़ निकालने का काम।

मैं—तो तुम उस घर में अपना सींग समा पाओगे क्या?

हं०—ज़रूर सींग गड़ाऊँगा। इतना बड़ा मौक़ा भला मैं छोड़ सकता हूँ?

मैं—अब जहाँ गये कि लालसिंह थापा की भुजाली तुम्हारी कोख में पार हुई। मैं तो इस जंजाल से बाहर हूँ भाई।

हँसकर हंसराज ने कहा—"अरे ऐसी बात मत कहो। तुमको तो ज़रूर चलना होगा। एक ही धक्के में संग छोड़ दोगे तो कैसे बनेगा?"

— —

४

दूसरे दिन सबेरे ही सर सर्वविजयनारायण की ड्योढ़ी पर हम लोग जा पहुँचे। बिना टिकट रेल में बैठने पर मन की जो दशा होती है, उसी दशा में उस कोठी के द्वार पर पहुँचे। आज द्वारपालों ने हम लोगों को नहीं रोका। लालसिंह थापा ने आज हम लोगों को देखकर भी नहीं देखा। भीतर जाकर हंसराज बाबू ने एक बेहरा से पूछा तो मालूम हुआ कि सर सर्वविजयनारायणसिंह बूढ़े काका स्टूडियो में हैं।

इतने बड़े लम्बे-चौड़े महल में सुपारी बराबर एक चीज़ ढूँढ़ने का दु:साहस अगर कोई कर सकता है तो उसके पात्र वही हंसराज बाबू हैं। और कोई होता तो कमर थामकर बैठ जाता, लेकिन मैं समझता हूँ यह काम ऐसा है कि पुआल के पहाड़ में से सूई का ढूँढ़ निकालना भी इससे सहज होगा। पहली बात यह कि आदमी क़ीमती चीज़ जहाँ रखता है जैसे आलमारी, तिजोरी आदि उसमें ढूँढ़ना तो व्यर्थ है। ऐसा धूर्त्त घाघ आदमी वैसी जगह में हीरा तो रक्खेगा नहीं। लेकिन कहाँ रक्खा है? इसका विचार करते-करते एडगर की एक कहानी की याद आई जो बहुत दिन हुए पढ़ी थी। उसमें एक दस्तावेज़ ढूँढ़ने की बात थी। अन्त को वह एक बिलकुल प्रकाश्य स्थान से बरामद हो गया था।

हंसराज दूसरे स्वभाव के आदमी हैं। वे आलसियों की तरह बैठकर तर्क करने में समय बितानेवाले तो हैं नहीं। उन्होंने नियम से यथारीति तलाशी शुरू कर दी। दीवाल में काँटा लगाकर देखने लगे कि कहीं पोला है या नहीं। बड़ी-बड़ी आलमारियाँ खोलकर उनमें से पुस्तकें निकालकर जाँचने लगे। सर सर्वविजय के मकान को चित्रों और मूर्त्तियों का एक कला-भवन कहना चाहिए। कमरों में तरह-तरह की सुन्दर तस्वीरें और मूर्तियों के प्लास्टर कास्ट सजाये हुए हैं और असबाब बहुत कम हैं। इस कारण उनको ढूँढ़ने में दो घंटे से अधिक नहीं लगा। सब ढूँढ़-खोजकर हम लोगों का हमला स्टूडियो पर हुआ। वहाँ किवाड़ पर थपका देते ही भीतर से बुलन्द आवाज़ आई—"आओ अन्दर।" अन्दर जाने पर देखा तो बहुत बड़ा हाल है। एक ओर की दीवार से लगा लम्बा एक टेबल चला गया है। टेबल पर तरह-तरह के चेहरों के यंत्र पंक्तिबद्ध सजाये हुए हैं। हम लोगों के भीतर जाते ही सर सर्वविजय बहादुर ने ज़ोर से हँसकर कहा—"क्यों हंसराज बाबू! पारसमणि मिली! कवियों ने लिखा है न—'पागल पारस पाथर खोजत खोज गया दिन सारा!' तुम्हारी भी वही दशा होगी देखते हैं। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते माथे की लटों के मारे जटाधारी बन जाओगे!"

हंसराज ने कहा—"एक बार आपके लोहे के सन्दूक़ को देखने का मन करता है।"

"अच्छी बात है। लो चाभी देख लो। मैं भी तुम्हारे साथ चलकर मदद देता, लेकिन प्लास्टर मूर्त्ति ढालने में बहुत देर लगेगी।

कुछ चिन्ता नहीं। विजय बाबू तुम्हारी मदद करेंगे और ज़रूरत हो तो लालसिंह थापा भी है।"

हं०—यह आप करते क्या हैं?

मुसकुराकर सर सर्वविजय बोले—"हमारी बनाई हुई नटराज महादेव की मूर्त्ति का नाम तुमने सुना होगा। यह उसी का एक छोटा प्लास्टर कास्ट तैयार कर रहा हूँ। और एक हमारे टेबल पर रक्खा है, देखा होगा तुमने। पेपरवेट के हिसाब से तो वह ख़राब नहीं न है?"

याद आ गया। सर सर्वविजय की बैठक में टेबल पर एक बहुत सुन्दर छोटी मूर्त्ति विश्वेश्वरनाथ महादेव की देखी थी। देखते ही मूर्त्ति का सौन्दर्य्य हृदय में घर कर गया। लेकिन यह मेरी कल्पना में नहीं आया कि वही सर सर्वविजयबहादुर की बनाई नीलकण्ठ महादेव की मूर्त्ति का मिनियेचर है। मैंने विस्मय से उनकी ओर देखकर पूछा—"यही मूर्त्ति आपने पेरिस की प्रदर्शिनी में एक्ज़िबिट की थी?"

"हाँ, उसका असल तो पत्थर पर है।"

मैं कमरे से बाहर आया। सर सर्वविजय का सर्वतोमुखी असाधारणत्व मुझे अभिभूत कर चुका था। इसी कारण जब हंसराज बाबू उनका सन्दूक खोलकर राई-रत्ती देखने लगे तब मैं चुपचाप खड़ा रहा। ऐसी प्रतिभा-वाले से युद्ध करके विजय पाने की आशा कहाँ रही। अब ढूँढ़-खोज ख़तम करके हंसराज ने लम्बी साँस ली। कहा—"नहीं जी, कहीं कुछ नहीं है। चलो अब थोड़ी देर बाहर बैठें।"

बैठक में जब हम लोग लौट आये तो देखा सर सर्वविजय आकर बैठे हैं और अपने ही मुँह के अनुसार लम्बा मोटा चुरुट दाँतों से दबाकर धूआँ फेंक रहे हैं। हंसराज की ओर ताककर बोले—"नहीं मिला न ? कुछ परवा नहीं, थोड़ा रेस्ट ले लो। फिर ढूँढ़ो। चुपचाप चाभी का गुच्छा हंसराज बाबू ने लौटा दिया। उसको अपनी जेब के हवाले करके सर साहब हमसे बोले—"क्यों विजय बाबू, तुम कहानी-वहानी लिखा करते हो ? इससे तुम तो बड़े दरजे के आर्टिस्ट हो। कहो यह पुतली कैसी बनी है।"

यही कहकर उन्होंने महादेव की छोटी मूर्त्ति मेरे हाथ में दी।

मूर्त्ति छः इंच लम्बी और तीन इंच चौड़ी होगी। लेकिन इसी में कैसी शिल्प-प्रतिभा दीख पड़ती है। नटराज का प्रलयङ्कर नृत्योन्मादन इस छोटी सी मूर्त्ति के प्रत्येक अवयव से मथित होकर उठ रहा है। कुछ देर तक देखने के बाद आप ही आप मुँह से बेतहाशा निकल गया—"वाह ! क्या ख़ूब ! बिलकुल लासानी मूर्त्ति है।"

हंसराज ने पूछा—"यह भी आप ही का मोल्ड किया हुआ है ?"

धूआँ फेंककर सर साहब बोले—"मैं नहीं तब दूसरा कौन करेगा ?"

अब हंसराज ने मेरे हाथ से मूर्त्ति ले ली और इधर उधर घुमाते हुए देखकर बोले—"यह चीज़ बाज़ार में तो नहीं मिलेगी जान पड़ता है।"

"मिलती तो नहीं। क्यों ? मिलती तो ख़रीदते क्या ?"

हं०—जान पड़ता है कि मैं ख़रीदता। अच्छा आप ही क्यों न ऐसा तैयार करके बाज़ार में बिक्री का इन्तज़ाम करें। इसमें पैसा तो ख़ूब मिलेगा!

"जब पैसे की कभी कमी होगी तब देखा जायगा। इस समय इस चीज़ को बाज़ार में बेंचकर लड़कपन करना नहीं चाहता।"

"अच्छा, अब मैं इजाज़त लूँगा। फिर उस बेला आऊँगा।" कहकर हंसराज मूर्ति को ठक से टेबुल पर रखकर उठ खड़े हुए।

आवाज़ सुनकर सर सर्वविजय चौंक उठे; बोले—"अरे तुम तो बिलकुल ही मूर्ख हो! इसको तो तोड़ ही दिया था।"

फिर हंसराज की ओर भूखे बाघ की तरह घूरकर गरज उठे—"देखो एक बार हम तुम लोगों को ख़बरदार कर चुके हैं। अब फिर चेता देते हैं। अगर कोई मूर्ति टूटी तो मैं तुरत कान पकड़कर निकाल बाहर करूँगा, फिर भीतर नहीं आने पाओगे।"

पश्चात्ताप दिखाकर जब हंसराज ने माफ़ी माँगी तब कुछ नरम होकर बोले—"ये सब मोलायम और क़ीमती कला की चीज़ें हैं। इनकी लापरवाही मैं बरदाश्त नहीं कर सकता। अच्छा, उस जून फिर आओगे? अच्छी बात है। 'उद्योगिनं पुरुषसिंह'। अब किस ओर काम करने का इरादा किया है? बग़ीचा खोदकर देखना चाहो तो उसका भी बन्दोबस्त कर दूँगा।"

अब ताने का तीर सहकर हम लोग बाहर आये। सदर सड़क पर पहुँचकर हंसराज ने कहा—"अच्छा चलो, अब पब्लिक लाइब्रेरी खुल गई होगी। उधर चलें, कुछ काम है।"

लाइब्रेरी में पहुँचकर हंसराज बाबू ने विश्वकोश देखा, उसमें प्लास्टर कास्टिङ्ग का वर्णन बड़े ध्यान से पढ़ा। फिर पुस्तक लाइब्रेरियन को लौटाकर सदर सड़क पर आये। मैंने चेहरा देखकर समझा कि किसी कारण से बहुत जोश में आ गये हैं। विलायती विश्वकोश देखने के बाद ही उनकी उत्तेजना बढ़ी है। घर पहुँचने पर मैंने पूछा—"क्यों प्लास्टर कास्टिंग के लिए इतनी खोज-पूछ क्यों? इतना कुतूहल क्यों हो रहा है तुमको?"

हं०—तुम तो जानते ही हो सब विषयों में इतना कुतूहल ही मेरी कमज़ोरी है।

मैं०—सो तो है। लेकिन तुमने क्या देखा, सो तो कहो।

हं०—देखा तो यही कि यह प्लास्टर कास्टिंग बहुत सुगम है। इसको जो चाहे सो सहज में कर सकता है। थोड़ा सा प्लास्टर आव पेरिस पानी में घोल दो। जब वह दही की तरह गाढ़ा हो उठे तब मिट्टी या मोम के साँचे में धीरे-धीरे ढाल दो। कोई दस मिनट में वह जमकर सख्त हो जायगा। बस, साँचे से निकाल दो। माल तैयार हो गया। इसमें कुछ काम है तो वही साँचा तैयार करने का है।

मैं—बस! तो इसके वास्ते इतनी हैरानी-परेशानी क्यों?

हं०—नहीं, हैरानी परेशानी कुछ नहीं। प्लास्टर आव पेरिस साँचे में ढालते समय अगर एक सुपारी या इसी तरह की इतनी ही बड़ी कोई कड़ी चीज़ डाल दी जाय तो वह भी उसी मूर्ति में रह जायगी।

मैं—अर्थात्?

कृपापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए हंसराज बाबू बोले—"अर्थात् बूझनवाला बूझ गया और न बूझे कोय।"

अब सन्ध्या समय फिर हम लोग सर सर्वविजय की ड्योढ़ी के भीतर गये। इस बार भी घर में राई-रत्ती सब ढूँढ़ा गया, लेकिन कुछ हाथ नहीं आया। बीच बीच में सर साहब आकर हम लोगों पर ताने-बाने छोड़ जाने लगे। अन्त को जब हम लोग थककर बैठक में पहुँचे, तब उन्होंने मानों थके हुए के साथ सहानुभूति दिखाई और चाय-पानी का प्रबन्ध कर दिया। मैं तो उनके इस आतिथ्य-सत्कार से लज्जित हुआ, लेकिन हंसराज सा बेहया आदमी सब ताने हज़म करके चाय चूसते हुए सर सर्वविजय से बातें करने लगा।

सर साहब ने पूछा—"अब और कितने दिन चलोगे! अभी आशा नहीं मिटी!"

हं०—आज शुक्रवार है। अभी दो दिन और बाक़ी हैं।

सर सर्वविजय ठठाकर हँसने लगे। हंसराज ने उनके हँसने की परवा नहीं की और टेबल पर से नटराज की मूर्ति हाथ में लेकर पूछा—"इसको कितने दिन हुए बनाये!"

भवें तानकर सर साहब ने कुछ सोचा। कहा—"हुआ होगा बीस-पच्चीस दिन। क्यों!"

"नहीं! यों ही पूछता हूँ।" कहकर हंसराज उठे। बोले—"अब आशा है न! कल्ह फिर आऊँगा।"

लौटकर घर पहुँचते ही नौकर ने एक लिफ़ाफ़ा हंसराज के हाथ में देकर कहा—"एक तगमावाला चपरासी दे गया है।"

हंसराज ने लिफ़ाफ़ा खोला तो उसमें दिग्विजयनारायण के नाम का विज़िटिङ्ग कार्ड है। दूसरी ओर पेंसिल से लिखा है—"आज मैं बम्बई आया हूँ। ताज होटल में ठहरा हूँ।"

हंसराज ने कार्ड टेबल पर रखकर कोच ग्रहण किया। कड़ी-काठ गिनते हुए दीवार ताकने लगे। मैंने समझ लिया कि दिग्विजय-नारायण के आने से वे ख़ुश नहीं हुए हैं। जब पूछा तब बोले—"आना इनका अच्छा नहीं हुआ। अगर इनके आने से सर सर्वविजय की राय बदल जाय तब तो सब गुड़ गोबर हो जायगा। फिर तो नये सिरे से सब काम शुरू करना होगा।"

सन्ध्या तक वह उसी कोच पर पड़े रहे। रात को हम लोग एक ही कमरे में अगल-बगल खाट पर सोया करते थे। बड़ी रात तक बातें होती थीं। लेकिन आज हंसराज ने कुछ नहीं कहा—मैं ख़ुद ही एक तरफ़ कुछ देर तक बोलता रहा, फिर नींद आ गई।

सोते में सपना देखता हूँ कि हम, हंसराज और सर सर्वविजय तीनों हीरे के मार्बल पर गोली खेल रहे हैं। हंसराज ने सब जीत लिया है। सर सर्वविजय हारकर धरती में पाँव फैलाये रो रहे हैं। इसी समय मेरी नींद खुल गई।

देखता हूँ तो हंसराज बाबू अँधेरे में मेरी खाट के पास बैठे हैं। मुझे जगा हुआ समझकर बोले—"देखो विजय, मुझे पूर्ण विश्वास है कि हीरा उनकी बैठक में टेबुल पर ही कहीं रक्खा है।" मैंने पूछा—"के बजे हैं ?"

हं०—ढाई बजा है। तुमको तो याद नहीं होगा। वह बूढ़ा अपनी बैठक में जब आता है, तब पहले टेबुल की ओर ही ताकता है।

मैं—ताकने दो, तुम अभी आँखें बन्द करके सो जाओ।

हंसराज सोने को कौन कहे बैठे बैठे आप ही कहने लगे—"टेबुल की ओर आते ही क्यों देखता है! ज़रूर दराज में है या नहीं तो टेबुल पर ही रक्खा है। टेबुल पर इतनी चीज़ें हैं—हाथी-दाँत की दावात, टाइमपीस, गोंद की शीशी, और कुछ किताबें, ब्लाटिङ्ग पैड, सिगरेट बक्स, आलपिन का गेंद और नटराज-महादेव की मूर्ति—"

मैं तो फिर सुनते ही सुनते सो गया। जब जब नींद खुली तब देखा कि हंसराज अँधेरे घर में टहल रहे हैं।

जब सबेरा हुआ, हंसराज बाबू ने कुँवर साहब को एक चिट्ठी लिख भेजी। उसमें इतना ही लिखा—"चिन्ता की बात नहीं। सोमवार को मैं किसी समय मिलूँगा।" उसके बाद दोनों आदमी बाहर निकले। मैंने हंसराज बाबू का चेहरा देखकर समझ लिया कि सारी रात जागकर इन्होंने कोई दृढ़ सङ्कल्प कर लिया है।

आज सर सर्वविजय बैठक में थे। हम लोगों को देखते ही उन्होंने बड़े आडम्बर से सम्मान-सहित कहा—"अच्छा! पहलवान की जोड़ी आ गई! आओ आओ! आज बड़े सबेरे आये। अरे कोई है! बाबू लोगों के लिए चाय तो लाना! आज हंसराज बाबू के चेहरे से तो जान पड़ता है कि चिन्ता के मारे रात भर सोये ही नहीं हैं।"

हंसराज बाबू नटराज की मूर्त्ति उठाकर देखते हुए कहने लगे—"इस मूरत में हमारा बड़ा मन लग गया है। रात भर इसकी सूरत और कारीगरी पर विचार करते करते नींद नहीं आई है।"

वहाँ दोनों एक दूसरे को मिनट भर तक बिना पलक डाले ताकते रहे। चुपचाप दोनों के मन में कैसा अवाक् युद्ध होता रहा, कह नहीं सकता। एक मिनट के बाद दूसरा बीता, तब सर साहब खिलखिलाकर हँस उठे। बोले—"हंसराज बाबू! तुम्हारे मन की बात मैं समझ गया! इस बूढ़े को सहज ही ठग नहीं सकोगे, याद रक्खो। तुमको इसके वास्ते नींद नहीं आई तो लो मैं यह मूर्त्ति तुमको बख़्श देता हूँ।"

इसके बाद हंसराज की ओर व्यङ्गपूर्ण कटाक्ष करके कहने लगे—"बस, अब तो मन की हो गई न? लेकिन देखो, यह है क़ीमती चीज़, हिफ़ाज़त से रखना, टूट न जाय।"

तुरत हंसराज बाबू सँभल गये। उन्होंने सर सर्वविजय को धन्यवाद दिया और रूमाल में लपेटकर मूर्त्ति जेब के हवाले कर दी। उसके बाद इधर-उधर नियमानुसार ढूँढ़-खोज करके ग्यारह बजते-बजते डेरे को लौट आये। घर में कुर्सी पर बैठकर कहने लगे—"नहीं यार, आज मैं ठग गया हूँ।"

मैंने पूछा—"क्या बात है, साफ़ कहो। मैं तो तुम लोगों की बात और तुम लोगों का भाव कुछ भी समझ नहीं सका।"

जेब से मूर्त्ति निकालकर हंसराज बाबू कहने लगे—"कई कारणों से मेरे मन में विश्वास हो गया था कि इस मूर्त्ति में हीरा ज़रूर है। देख लो विचार करके—ऐसी सुन्दर छिपाने की जगह

और क्या हो सकती है ? हीरा सबके सामने टेबल पर रक्खा है और किसी की नज़र नहीं पड़ती। इसको सर सर्वविजय ने अपने ही हाथों ढाला है। ढालते समय सुपारी बराबर हीरा प्लास्टर के साथ ही ढाल देना कुछ कठिन काम तो है नहीं, इसी से सर साहब का मनोरथ सिद्ध हो जाता है। सामने सदा साथ में नज़रों के सामने हीरा मौजूद है और किसी को सन्देह होने का अवसर भी नहीं। जिधर से देखो, सब ओर अनुमान और युक्ति इसी मूर्त्ति पर उँगली उठाती है। इसी से मेरे मन में यह बात पक्की बैठ गई थी कि और कहीं नहीं हो सकता। आज मैं इरादा करके गया था कि इसको चुराकर लाऊँगा। लेकिन बूढ़े ने मुझे ठग लिया। इतना ही नहीं, बल्कि बुढ़वा ऐसा काइयाँ है कि मेरे भीतर का भाव ताड़कर मुझे दान कर दिया। ऊपर से ताने भी देता रहा। घाव करके ऊपर से नमक लगाने में है बुढ़वा एक नम्बर का पक्का। लेकिन अब तो मेरा सब सोचा हुआ यहीं समाप्त हो गया। अब फिर शुरू से काम करना होगा।"

मैं—लेकिन समय तो अब काफ़ी नहीं। एक ही दिन रह गया है।

हंसराज बाबू मूर्ति के नीचे पेंसिल से अपने नाम का पहला अक्षर H लिखते हुए बोले—"हाँ, एक ही दिन तो रह गया। जान पड़ता है प्रतिज्ञा-भङ्ग होने का समय आया है। वादाख़िलाफ़ी तो बड़ी बदनामी का कारण होती है। साख बिगड़ जाती है। इधर कुँवर साहब डेरा डालकर पड़े हैं। देखते हैं, इसमें तो बूढ़े ने मुझे किसी ओर का नहीं रक्खा। यही एक मूर्ति हमारे हाथ लगी। और तो सब—"

यही कहकर हंसराज ने मूर्त्ति टेबल पर रख दी। और छाती में ठुड्डी सटाकर सिर झुकाये कुछ सोचने लगे।

सन्ध्या को नियमानुसार सर सर्वविजय की ड्योढ़ी पर पहुँचे। सुना कि मालिक थोड़ी ही देर हुई बाहर गये हैं। अब हंसराज ने दूसरा रास्ता पकड़ा। मुझे हट जाने का इशारा करके लालसिंह थापा से मैत्री करने लगे। मैं अकेला बग़ीचे, फुलवाड़ी की सैर करने लगा। रह रहकर नज़र डालता हूँ तो थापा और हंसराज बाबू दोनों पास ही पास स्टूल पर बैठकर मैत्रीभाव से बातें कर रहे हैं। हंसराज बाबू आदमी के विश्वास और मन को अपनी मुट्ठी में करने में सिद्धहस्त हैं। लेकिन लालसिंह थापा का पहाड़ी मन पिघलाकर उसके पेट से बात बाहर निकाल सकेंगे या नहीं, इसी में मुझे सन्देह होने लगा।

कई घंटों के बाद जब हम लोग सड़क पर निकल आये तब हंसराज बाबू ने कहा—"कुछ काम तो नहीं बना विजय बाबू! यह थापा या तो वज्र मूर्ख है या हमसे भी बढ़कर बुद्धिमान् है, मूर्ख बन रहा है।"

जब दोनों आदमी डेरे पर पहुँचे, तब मालूम हुआ कि एक आदमी भेंट करने आया था। यहाँ घंटा भर राह देखकर लौट गया है, फिर आने को कह गया है।

हंसराज बाबू ने कहा—"माढुङ्गा के मालिक का पियादा रहा है।"

इस हैरानी परेशानी से मैं भी थक गया था। कहा—"छोड़ो हंसराज बाबू! इस मामले को जाने दो। इसमें दाँत नहीं गड़ेगा देखते हैं। साफ़-साफ़ कुँवर साहब से कह दो।"

टेबुल के सामने बैठे हंसराज बाबू उस मूर्ति को अच्छी तरह बार बार देखने और कहने लगे—"देखें, अभी कल दिन भर है। अगर कल भी कुछ नहीं कर सका तो—"

उनकी बात उनके मुँह में ही रह गई। देखा तो उनका चेहरा लाल हो गया है। टकटकी लगाये मूर्त्ति की ओर देख रहे हैं।

मैंने विस्मय की दृष्टि से देखकर पूछा —"क्या हुआ हंसराज बाबू !"

हंसराज ने काँपते हाथों मूर्त्ति मेरे सामने करके कहा—"देखो ! देखो ! यहाँ मैंने पेंसिल से H एच लिखा था, वह तो इसमें है नहीं।"

मैंने देखा तो सचमुच वह अक्षर नहीं है, लेकिन इसके लिए इतनी चिन्ता क्यों ! पेंसिल का लिखा पुँछ गया होगा।

"तुम समझते नहीं" कहकर हंसराज बाबू बोल उठे—"यह बुढ़वा तो हमको बड़ा धोखा दे गया है विजय बाबू ! एकदम मुझे भकुआ बनाकर छोड़ दिया है।" अब उसी दम अपने नौकर को बुलाया। कहा—"जो आदमी भेट करने आया था, उसको तुम कहाँ बिठाये रहे ?"

"यहीं, घर में !"

हं०—जब तक वह बैठा रहा, तुम इस घर में ही थे ?

"हाँ, लेकिन एक गिलास जल माँगा तब उसी को लेने—"

हं०—अच्छा, जाओ।

कुछ देर चुपचाप बैठे रहकर फिर हंसराज बाबू हँसने लगे। फिर बोले—"तुमको सुनकर आश्चर्य होगा। हीरा आज सबेरे से सन्ध्या तक इसी टेबल पर रक्खा था।"

मैं तो सुनते ही अकचकाकर उनका मुँह ताकने लगा। मन में हुआ कि आज इनका दिमाग़ ख़राब हो गया है या क्या बात है।

फिर सुना कि बग़लवाले घर से हंसराज बाबू फोन कर रहे हैं। कहते हैं कुँवर दिग्विजयनारायण। "हाँ! मैं हूँ हंसराज! कल दस बजे के भीतर ही आप पावेंगे। आपकी स्पेशल ठीक रहनी चाहिए। पाते ही रवाना हो जाइएगा। आपका यहाँ रहना बड़े ख़तरे का होगा। अच्छा, और बातें पीछे होंगी। देखिए, मैंने जो कहा सो भूलिएगा नहीं। आपको तुरत शहर छोड़ देना होगा। अच्छा, आप कुछ चिन्ता न करें। आपकी स्पेशल की रवानगी के लिए मैं प्रबन्ध कर दूँगा। आप किसी से कहिएगा मत। सेक्रेटरी से भी मत कहिए। अच्छा, नमस्कार।"

इसके बाद हंसराज हैट कोट पैंट पहनकर बाहर निकल गये। मैंने समझ लिया कि स्पेशल का बन्दोबस्त करने गये हैं। जाते समय कह गये—"मुझे लौटने में देर होगी, तुम खा-पीकर सो रहना।"

मुझे नहीं मालूम कि रात के कब लौटे। सबेरे नव बजे जब हम दोनों बाहर निकले उस समय देखा तो नटराज मूर्त्ति जहाँ थी वहाँ नहीं है। मैंने जब पूछा तब हंसराज बाबू ने कहा—"वह रक्खी है। वहाँ से हटा दिया है।"

हम लोगों को देखते ही सर सर्वविजय, जो अपनी बैठक में ही थे, बोले—"तुम लोगों से मेरा ऐसा अनुराग हो गया है कि जब तक नहीं आते तब तक कैसा तो सूना-सूना सा जान पड़ता है।"

हंसराज नरमी से बोले—"आप पर मैंने बहुत ज़्यादती की है लेकिन अब वे बातें नहीं होंगी। यही बात आज मैं आपसे कहने आया हूँ। जय-पराजय तो एक पक्ष की अवश्यम्भावी है, इसके लिए दु:ख करना मूर्खों का काम है। कल से अब हम लोग यहाँ नज़र नहीं आवेंगे। आपको तो मालूम ही है कि आपके भतीजे यहाँ होटल में आकर ठहरे हैं। उनसे मैंने कह दिया है कि आपका यहाँ रहना बिलकुल बेफ़ायदा है। आज उनको आख़िरी जवाब दे दूँगा।"

सर सर्वविजय ने टेढ़ी नज़र से कुछ देर तक हंसराज की ओर देखा। फिर ऐसे ही हँसे जैसे बुलडाग की हँसी होगी। बुलडाग हँसता है या नहीं यह तो मालूम नहीं है, लेकिन अगर हँसे तो ऐसा ही हँसेगा जैसा सर साहब इस समय हँस पड़े। फिर बोले—"ख़ुशी की बात है कि तुमको सुबुद्धि आई है हंसराज बाबू! बच्चा जी से भी कह देना कि फ़ज़ूल इस काम में समय नष्ट न करें।"

"अच्छा, मैं कह दूँगा।" कहकर सामने ही टेबुल पर की महादेव-मूर्ति, जो और रक्खी थी, उठा ली और बोले—"देखता हूँ यह आपने एक और तैयार कर ली है। आपका बख़्शा हुआ माल मैंने बड़े यत्न से रक्खा है। लेकिन इसी लिए नहीं कि वह क़ीमती और बढ़िया चीज़ है, बल्कि इसलिए कि सर सर्वविजय बहादुर का दिया हुआ सम्मान-चिह्न है। अगर वह कभी फूट जाय तो मुझे दूसरा मिलेगा न?"

"हाँ, अगर टूट-फूट जाय तो दूसरी वैसी ही दे देंगे। मेरे घर आने से तुमको शिल्पकला में अनुराग उपजा है, यह भी कम फ़ायदे की बात नहीं है।"

नम्र भाव से हंसराज बाबू ने कहा—"जी हाँ। अब तक मानों मेरे भीतर उधर की श्रद्धा पर पर्दा पड़ा था। लेकिन इधर कई दिनों से आपकी सङ्गति के प्रभाव से ललित कला का रस पाने का अवसर मिला है। अब मैं समझ रहा हूँ कि यह कला भी बड़ी रत्नप्रसवा है। अच्छा, यह तस्वीर भी बड़ी बढ़िया है। आप ही का यह भी उरेहा हुआ है न?" कहकर हंसराज ने उनकी पीठ की ओर टँगी एक बड़ी तस्वीर की ओर उँगली उठाई।

सर सर्वविजय ने जब उस ओर मुँह किया उसी समय हंसराज ने, मैजिक प्रोफ़ेसर की तरह, बड़ी सफ़ाई का हाथ दिखलाया। टेबुल से उठाई हुई उस मूर्ति को उन्होंने जेब के हवाले करके अपनी पहले-वाली मूर्ति हाथ से निकालकर टेबुल पर रख दी। जब सर साहब ने लौटकर हंसराज पर नज़र डाली, तब वे उसी तरह उस टँगी हुई तस्वीर को मानों श्रद्धा से ताक रहे थे।

मेरे हृदय में तो बड़ी गड़बड़ी मची। लेकिन सर साहब ने शान्ति से कहा—"हाँ, इसे भी मैंने ही बनाया है।" यह बात मेरे लिए बहुत शान्ति-प्रदायिनी हुई। उन्होंने उस समय मेरी ओर नहीं देखा, नहीं तो उनके ऐसा निपुण पारखी हंसराज के हाथ की सफ़ाई पर अकचकाये हुए मेरे मन का चेहरा दर्पणवत् ज़रूर ताड़ जाता।

"अच्छा, अब मैं आज्ञा चाहता हूँ। आपके यहाँ आने से मुझे जो गुण प्राप्त हुए हैं उनके लिए मैं आपका आजीवन ऋणी रहूँगा। भरोसा है, आप भी हम लोगों को नहीं भूलेंगे। जब काम पड़े, इस

सत्यान्वेषी को ज़रूर याद कीजिएगा। सत्य की खोज ही मेरा काम है। तो चलो विजय बाबू! अच्छा अब मेरा सादर अभिवादन स्वीकार हो।"

दरवाज़े के पास जाकर देखता हूँ तो सर साहब बड़े सन्देह की दृष्टि से हम लोगों की ओर देख रहे हैं। मालूम हुआ कि वे हंसराज बाबू की अन्योक्ति को समझते-समझते भी नहीं समझ रहे हैं।

बाहर सदर सड़क पर आते ही ख़ाली टैक्सी सामने आई। उसी पर हम लोग जा बैठे। हंसराज बाबू ने हुक्म दिया-"ताज होटल।"

मैंने उनका हाथ धरकर कहा—"बतलाओ हंसराज बाबू, यह सब क्या घोटाला* है।"

हं०—अरे! तुमने अब तक नहीं समझा, यह बड़े अचरज की बात है। मैंने जो अनुमान किया था कि हीरा नटराज की मूर्ति में ही है वह बिल्कुल ठीक निकला। बूढ़े ने समझ-बूझकर वह मूर्ति मुझे दी, लेकिन वैसी ही दूसरी तैयार करके वह मेरे न रहने पर मूर्ति बदल लाया, जिस पर कल मैंने अपने नाम का इनीशियल पहला अक्षर एच H पेंसिल से बनाया था। अगर मैं वह चिह्न न बनाता तो इतनी जल्दी यह बदलौअल पकड़ में नहीं आती।

आज मैंने देखा तो इस मूर्ति के पेंदे में वह एच H मौजूद है। हंसराज ने कहा—"कल जब हम लोगों ने डेरे पर सुना कि कोई

---

* बम्बई में बड़ा गड़बड़ मामला होने पर उसको घोटाला कहते हैं।

मिलने आया था, तभी खटका हुआ। मैंने देखा तो उस मूर्ति का एच ग़ायब है जिस पर तुमने कहा था कि पेंसिल का लिखा पुछ गया होगा। आज जब मैंने सर साहब की कोठी पर पहुँचकर वहाँ की मूर्ति के पेंदे में अपना लिखा H देखा तब सब मामला साफ़ हो गया। बस, मेरे पास जेब में जो नक़ली मूर्ति थी उसके बदले असली, उनको सफ़ाई से धोखा देकर, लेनी पड़ी।

मैं—तो ठीक मालूम है कि वह हीरा इसी में है ?

"हाँ, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं।"

मैं—अगर इसमें न हो ?

"न हो तब समझना होगा कि दुनियां से सत्य नाम की वस्तु उठ गई है। शास्त्र का अनुमान-खण्ड एकदम मिथ्या है।"

अब हम लोग ताज होटल पहुँचे। माडुआ के कुँवर साहब ख़बर पाते ही उकताये हुए दोनों हाथ बढ़ाये आये। बोले—"कहिए हंसराज बाबू ! क्या हुआ ?"

हंसराज ने नटराज की मूर्ति सामने टेबुल पर रखकर तर्जनी उँगली दिखाई। कुँवर दिग्विजयनारायण ने घबराकर कहा—"यह देखता हूँ। काकाजी की बनाई हुई नटराज महादेव की मूर्ति है। हमारा वह छत्रपति हीरा कहाँ है ?"

"इसी में है।"

कुँ०—इसमें ?

"हाँ, इसी में। लेकिन आप रवानगी को तैयार हैं न ! आपकी स्पेशल ठीक साढ़े दस में छूटेगी।"

उकताकर कुँवर दिग्विजयनारायण ने कहा—"लेकिन मैं समझ नहीं रहा हूँ आपकी यह पहेली। इस मूर्ति में मेरा छत्रपति हीरा है?"

"यदि विश्वास नहीं होता तो 'साँच देखिए जाँच'।" यही कहकर एक पत्थर का पेपरवेट उस मूर्ति पर हंसराज ने मारा। मूर्ति वहीं चूर हो गई। उसमें से हीरा हाथ से उठाकर हंसराज ने कहा—"लीजिए अपना वह हीरा।"

उसमें अभी कुछ प्लास्टर लगा था, लेकिन मालूम हो गया कि हीरा है। कुँवर दिग्विजयनारायण उनके हाथ से हीरा लेकर बड़े उल्लास से बोले—"हाँ, यही हमारा वह ख़ान्दानी हीरा है। इसके भीतर से जो नीली आभा निकल रही है वही सुबूत है। हंसराजबाबू! अब बतलाइए किस तरह मैं कृतज्ञता प्रकाश करूँ।"

"मैं इतना ही कहता हूँ कि आप अब यहाँ से चल दीजिए। अगर बूढ़े को जल्दी पता लगेगा तो छीन लेने में देर नहीं लगेगी।"

कुँ०—सो तो मैं अभी रवाना होता हूँ। लेकिन आपको—

"वह बात पीछे होगी। आप बेखटके घर पहुँच जाय, तब उसकी व्यवस्था कीजिएगा।"

कुँवर बहादुर को स्टेशन रवाना करके तब हम लोग डेरे पर पहुँचे। हंसराज बाबू ने कौच पर लम्बे होकर मानों शान्ति की साँस ली और कहा—"मैं यही सोचता हूँ कि बूढ़े को जब यह ख़बर लगेगी तब वह क्या कहेगा।"

कई दिनों के बाद कुँवर दिग्विजयनारायण का भेजा हुआ एक बीमावाला लिफ़ाफ़ा आया। खोलने पर उसमें चेक सहित एक चिट्ठी मिली। उसमें लिखा था—

प्रिय हंसराज बाबू !

आपकी कृतज्ञता के चिह्न-स्वरूप इसके साथ जो भेज रहा हूँ, वह आपकी प्रतिभा के योग्य नहीं है तो भी आशा है आप इसको स्वीकार करेंगे। जब आपसे अबकी भेंट होगी तब मैं सब विवरण सुनूँगा।

विजय बाबू को भी मेरी ओर से धन्यवाद दीजिए। उनके ऐसे साहित्यिक की योग्यता को रुपये से तौलकर मैं उनको अपमानित करना नहीं चाहता। (हाय रे अभागे साहित्यिक के ललाट) लेकिन वे नाम-धाम बदलकर एक हीरक-विभ्राट् उपन्यास लिख सकें तो इसमें मुझे कुछ भी एतराज़ नहीं होगा। सादर नमस्कार स्वीकार हो।

भवदीय प्रतिभामुग्ध

दिग्विजयनारायण।

——

भण्डाफोड़

१

हंसराज को आज बलात् मैंने घर से प्रस्थान कराया था। गत एक महीने से वे एक भयंकर जालसाज़ी की जाँच में लगे हुए थे। दस्तावेज़ों की एक गड्डी लेकर उसी की उधेड़-बुन में रात-दिन अपराधी की खोज कर रहे थे। वह मामला जितना ही गहरा होता जाता था उतना ही उनकी बातचीत घटती जा रही थी। लाइब्रेरी में बैठे-बैठे रोज़ उन दस्तावेज़ों को उलटते-पलटते उनका शरीर ख़राब हो रहा था लेकिन अगर कभी मैं पूछता तो यही कहते थे—"नहीं, मैं तो अच्छी तरह से हूँ। मुझे कोई तकलीफ़ नहीं है।"

मैं—मैं अब कुछ नहीं सुनूँगा। चलो, दो घंटे घूम तो आवें।

हं०—लेकिन—।

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं, चलो विक्टोरियाबाग़ देख आवें। तुम्हारा जालसाज़ भाग नहीं जायगा। दो घंटे तो सैर कर आवें।"

"चलो" कहकर काग़ज़-पत्र सँभालकर रखते हुए चले; लेकिन उनका मन अभी उसी जालसाज़ के पीछे चला जा रहा है, यह समझने में देर नहीं हुई।

रानीबाग़ में घूमते हुए कालेज के एक पुराने साथी से भेंट हो गई। आज उस आदमी को बहुत दिनों पर देखा। एल्फ़िस्टन

कालेज में हम लोग आई० ए० में एक साथ पढ़ते थे। उसके बाद वह मेडिकल कालेज में गया। तभी से संग छूटा था। उसको देखते ही मैंने कहा—"अरे यार खड्कू! तुम कहाँ से?"

खड्कू उल्लास से बोला—"वाह भाई विजय! बहुत दिनों पर दर्शन मिला। कहो यार कैसे हो?"

कुछ देर गले-गले मिलने पर मैंने हंसराज से उसका परिचय करा दिया। खड्कू ने कहा—"ओहो! आप ही हैं। बड़े भाग्य से आपका दर्शन मिला। कभी-कभी पढ़कर मन में आता था कि हमारे क्लास-फ़ेलो विजय ही आपके सहायक हैं, लेकिन फिर न जाने क्यों विश्वास हट जाया करता था।"

मैंने पूछा—"आजकल क्या करते हो खड्कू?"

"यहीं प्रैक्टिस करता हूँ गिरगाम बैकरोड में।"

इसके बाद घूमते-घामते घंटों बीत गये। बातें करते समय ऐसा मालूम हुआ कि खड्कू कोई बात कहना चाहता है, लेकिन किसी कारण रुक जाता है। हंसराज बाबू को भी इसका अनुभव हुआ। उन्होंने हँसकर कहा—"अच्छा, आप जो कहना चाहते हैं, कहिए। रुकते क्यों हैं?"

"हाँ, आपने ठीक पहचाना। मैं कहना तो चाहता हूँ लेकिन एक तुच्छ बात है इसी से कहता हूँ कि आपको तकलीफ़ न दूँ। और—"

मैं—नहीं कहो यार! और कुछ न सही, हंसराज बाबू को उस जालसाज़ से कुछ देर रिहाई तो मिले।

ख०—जालसाज़ कौन ?

मैंने जब समझा दिया तब खड़कू ने कहा—"ओहो ! मेरी बात सुनकर तो हंसराज बाबू बहुत हँसेंगे—"

हं०—हँसने की बात होगी तो ज़रूर हँसूँगा; लेकिन आपके भाव से तो वह बात नहीं जान पड़ती। जान पड़ता है, आपको कोई समस्या कुछ दिन से चिन्तित कर रही है। आप उसका जवाब ढूँढ़ रहे हैं।

ख०—हाँ, आपने ठीक बात कही है। बात बहुत सहज है लेकिन हमारे लिए वह बड़ी जटिल समस्या हो रही है। मैं बेवक़ूफ़ नहीं हूँ। लेकिन एक रोगी, जो चल भी नहीं सकता, मुझे बिलकुल बेवक़ूफ़ बना रहा है। आप सुनकर हँसेंगे। केवल मुझे ही नहीं, अपने परिवार भर को छका रहा है। वे लोग बड़ी कड़ी नज़र रखते हैं फिर भी सब व्यर्थ कर रहा है।

बात करते-करते हम लोग एक बेञ्च पर आ बैठे। खड़कू ने कहा—"जहाँ तक बनेगा, मैं थोड़े में सब समझा देता हूँ। सुनिए, मैं एक बड़े आदमी का फेमिली डाक्टर हूँ। वह घर ख़ान्दानी रईस का है। और सब जायदाद के सिवा बम्बई में उनका एक बाज़ार है, उससे हज़ार डेढ़ हज़ार रुपया महीना आमदनी है। इससे भी उनकी आर्थिक दशा समझ में आ जाती है।

"उस घर के जो मालिक हैं, उनका नाम बाबू दुलारेलाल हैं। वही उस मकान में मेरे रोगी हैं। जवानी में उन्होंने अपना जौहर ऐसा खो दिया कि पचास बरस तक पहुँचते-पहुँचते उनका शरीर निकम्मा

हो गया। वात रोग से चौरङ्गी हो चुके हैं। चल-फिर नहीं सकते। उनके शरीर में और भी कितने रोग हैं, गिनना सहज नहीं है। इसके सिवा पक्षाघात का भी लक्षण दिखाई दे रहा है। डाक्टरी में लिखा है कि ऐसे रोगी का अब तक जीता रहना ही बड़ा आश्चर्य्य है। कबीरदास ने कहा है—'नव द्वारे का पींजड़ा, तामें पंछी पौन—रहने को आश्चर्य्य है, गये अचम्भा कौन।' यही तो उन देवता की दया है।

"इन दुलारेलाल का चरित्र मैं क्या समझाऊँ। बड़े बेसील, कड़ी बातें कहनेवाले, कुटिलता से भरे और हिंसापरायण हैं। संक्षेप में कहना चाहिए कि ऐसा नीच स्वभाव देखने को नहीं मिलता। घर में स्त्री, बेटा और परिवार के सब लोग हैं, लेकिन किसी से सद्भाव नहीं है। वे चाहते हैं कि जवानी में जैसे बे लगाम चलते थे वैसे ही अब भी अपने मन का चला करें। लेकिन शरीर जवाब दे रहा है। अब वह शक्ति-सामर्थ्य तो रही नहीं, इसी वास्ते सारी दुनिया पर बिगड़ेदिल बने रहते हैं। सबसे ईर्ष्या-द्वेष रखते हैं। सब पर ऐसे बिगड़ते हैं मानों उनके असमर्थ होने में यही लोग कारण हैं। हमेशा लड़ने का वसीला खोजते रहते हैं कि कैसे सबको तङ्ग करें।

"शरीर में शक्ति नहीं है। दिमाग़ भी साथ नहीं दे रहा है। छाती धड़कती है। इससे घर से तो बाहर नहीं निकल सकते। घर ही में बैठे सारे संसार को गाली-गलौज किया करते हैं। उनका यह भी ख़याल है कि वे बड़े सिद्ध साहित्यिक हैं। कभी काली रोशनाई से, कभी लाल से, पोथा का पोथा लिखते जाते हैं। सम्पादकों पर वे

बड़े चिढ़े हुए हैं। उनको यही विश्वास है कि सम्पादक लोग उनसे दुश्मनी करके ही उनका लेख नहीं छापते।"

मैंने पूछा—"वे लिखते क्या हैं?"

"लिखते हैं कहानी, आत्म-चरित। एक बार उनके लेख पर मैंने नज़रसानी की थी, फिर कभी नहीं पढ़ा। उनका लेख पढ़ने पर गङ्गा-स्नान कर आने पर भी मन को शान्ति नहीं मिलती, न पवित्र भावना आती है। आजकल के नवयुवक लेखक भी उनकी कहानी पढ़कर भौंचक हो जायँगे।"

हंसराज बाबू हँसकर बोले—"चरित्र तो मानों आँखों के सामने खड़ा हो गया, लेकिन समस्या तो कहो—"

खड़कू ने हम दोनों को एक-एक सिगरेट दिया और एक आप ही जलाकर खींचते हुए कहा—"आप लोग समझेंगे कि बस एक शरीर के लिए इतने काफ़ी हैं, लेकिन नहीं, इतने पर भी एक अपूर्व नशा है उनको।"

सिगरेट को दो बार और कसकर खींचते हुए खड़कू ने कहा—"हंसराज बाबू, आप तो ऐसे लोगों के बड़े जानकार हैं। समाज के ऐसे दुलारों से आपका बहुत काम पड़ता है। शराब, गाँजा, चण्डू, कोकेन आदि खानेवाले तो आपने देखे होंगे लेकिन मकड़े का रस खाकर नशा करनेवाला आपने कभी नहीं देखा होगा।"

मैं तो आसमान से गिरा; कहा—"ऐं! मकड़ी का रस कैसा?"

"एक कीड़ा है। उसकी देह पीसकर एक तरह का विष निकाला जाता है—"

हंसराज बाबू ने कहा—"हाँ, पुस्तकों में पढ़ा है। स्पेन देश में इसका चलन था। वह मकड़ी नहीं, एक दुमचलना कीड़ा होता है वह मकड़ी के जाल में पड़कर हरदम नाचता रहता है। इस देश में तो किसी को ऐसा करते नहीं देखा कभी।"

खड़कू ने कहा—"हाँ, ठीक बात है। टैरेंटुला (Tarantula) का रस एक विष होता है—दक्षिणी अमेरिका के स्पेनिश वर्णसङ्करों में इस विष का प्रचार है। यह विष कम मात्रा में व्यवहार करने से शरीर के स्नायुमण्डल में बड़ी उत्तेजना पैदा करता है। आप तो जानते ही हैं कि स्वभाव के दोष से जिनको स्नायविक उत्तेजना बिना रहा नहीं जाता, उनके लिए यह रस लोभनीय वस्तु होती है। लेकिन नियमित व्यवहार से यह सांघातिक हो उठता है। अस्वाभाविक रूप से उत्तेजना बढ़ाते रहने से स्नायुमण्डल धीरे-धीरे शक्तिशून्य होता जाता है। उसके बाद ही मस्तिष्क में पक्षाघात होकर मनुष्य की मृत्यु अवश्यम्भावी हो उठती है।

"जान पड़ता है, हमारे दुलारेलाल ने जवानी से ही यह नशा करना शुरू किया। बाद को जब शरीर निकम्मा हो चला, तब भी उसको नहीं छोड़ सके। फ़ेमिली डाक्टर होकर मैं जब उनके यहाँ गया, तब भी वे खुल्लमखुल्ला यह नशा कर रहे थे। मैंने जाते ही यह नशा बन्द कर देने को कहा। यह कह दिया कि अगर जान बचाना है तो इसको फ़ौरन छोड़िए।

"इसके लिए उनसे मेरी बड़ी बहस हुई। वे खाने पर तुल गये; मैं छुड़ाने को कमर कसके खड़ा हुआ। अन्त को मैंने कह दिया

कि यह चीज़ मैं इस घर में आने ही नहीं दूँगा। देखता हूँ आप कैसे खाते हैं। उन्होंने कहा—"ऐसा! अच्छा, मैं खाऊँगा। देखूँ कैसे छुड़ाते हो!"

"परिवार के सब लोग मेरी ओर रहे। बस, घर के चारों ओर पहरा पड़ गया। उनकी स्त्री और लड़के पारी बाँधकर पहरा देने लगे कि किसी तरह वह विष उनके पास पहुँच न सके। वे तो इतने शक्तिहीन थे कि बाहर नहीं जा सकते थे, इससे स्वयं उसे उपार्जित करने से रहे। मैंने समझ लिया कि अब उनके पास तक वह चीज़ पहुँच ही नहीं सकती। इसी विचार से निश्चिन्त हो गया।

"लेकिन इतना कड़ा पहरा, इतना प्रबन्ध, इतनी निगरानी होने पर भी वे अपना नशा वैसे ही चलाने लगे। कहाँ से कैसे वह चीज़ पहुँचती है, इसका पता कोई नहीं पा सका। पहले मुझे सन्देह हुआ कि घर में कोई आदमी छिपकर उनकी मदद कर रहा है। इसी कारण एक दिन मैंने ख़ुद बैठकर पहरा दिया। लेकिन सुननेवालों को भी आश्चर्य होगा, तीन-तीन बार उन्होंने उसका व्यवहार किया। फिर भी मैं नहीं पकड़ सका कि किधर से कैसे कब वह चीज़ वहाँ लाई गई।

"उसके बाद मैंने आने-जानेवालों की तलाशी ली। सभी मित्रों को सावधान किया, लेकिन उनकी ख़ुराक बन्द नहीं हुई। उसी गति से बराबर चलती रही। अब भी वह चल रही है।

"अब समस्या यह रही कि इतनी देख-रेख और कड़ी निगरानी पर भी वह आदमी कहाँ से अपनी ख़ुराक पाता है, किससे कैसे मँगाता है और कब खा लेता है!"

हंसराज बाबू सुनते रहे। फिर उठकर बोले—"चलो विजय बाबू घर चलें। एक बात सूझ पड़ी है। अगर वह हो जाय तो—"

मैंने समझ लिया, अब फिर वह पुराना जालसाज़ हंसराज पर चढ़ गया है। खड़कू की बातें उनके कान में गईं या नहीं सन्देह है। इसी से पूछा—"खड़कू की बातें ध्यान देकर नहीं सुनीं?"

हं०—सुनी हैं, खूब मन लगाकर। मज़ा भी है उनमें, लेकिन मैं इस घड़ी बड़े कठिन झंझट में हूं। इन दिनों अवकाश कहाँ है कि—

खड़कू मन में कुछ दुखी हुआ, लेकिन मन का भाव छिपाकर बोला—"अच्छा जाने दो भाई! ऐसी अधिक आवश्यकता भी नहीं है अभी। आपको इन मामलों में तकलीफ़ देना उचित भी नहीं है। हाँ, इतना ज़रूर है कि इसमें ध्यान लगाने से एक आदमी की जान बचाई जा सकती है। कोई आदमी, चाहे कितना ही बड़ा पातकी क्यों न हो, बूँद-बूँद विष खाकर आत्महत्या कर रहा है। सामने देखकर दया आती है, इतनी ही बात है।"

हंसराज कुछ लज्जित होकर बोले—"मैं इस बात से नाहीं नहीं करता। इस काम में लगने से कई घंटे विचारना होगा। और उस आदमी को एक बार देखने की भी ज़रूरत होगी। मैं आज वह काम नहीं कर सकूँगा। दुलारे बाबू ऐसे आदमी को मरने नहीं दिया जा सकता। आप बेफ़िक्र रहें। इस समय मुझे डेरे को लौटना बहुत ज़रूरी है। ऐसा जान पड़ता है कि उस जालसाज़ को मैंने पकड़ लिया है। लेकिन एक बार सब काग़ज़ अच्छी तरह

देखने की आवश्यकता है। इसलिए आज दुलारेलाल को विष खा लेने दीजिए, कल मैं उन्हें एकदम रोक दूँगा।"

ख०—अच्छी बात है, कल ही सही। आपको किस समय सुविधा होगी, बतलाइए तो मैं कार भेज दूँगा।

फिर हंसराज ने कुछ सोचकर कहा—"अच्छा, एक काम किया जाय। विजय बाबू आज आपके साथ जाकर देख-सुन आवें, फिर उनसे सब बातें सुनकर आज रात को या कल सबेरे आपके गोरखधन्धे का जवाब दे दूँगा।"

हंसराज बाबू के बदले मेरे जाने की बात से खड़कू के भीतर जो निराशा आई उसको उसकी आँखों पर मैंने साफ़ देखा। हंसराज उसे ताड़कर मुसकुराते हुए बोले—"विजय बाबू आपके लड़कपन के साथी हैं, इसी से उन पर आपकी श्रद्धा नहीं हो रही है। लेकिन आप निराश न हों। सद्गुरु से उनकी बुद्धि अब बहुत सान पर चढ़ गई है। दो एक उदाहरण आप सुनेंगे तो दाँतों उँगली दबायेंगे। मैं समझता हूँ, यही आपका काम सम्पन्न कर देंगे, मेरी ज़रूरत भी नहीं होगी।"

इतनी बड़ी सिफ़ारिश पर भी खड़कू के भीतर कुछ उत्साह नहीं आया। रोहू मसाड़ (एक प्रकार की बड़ी मछली) पकड़ने की आशा से बंसी फेंककर सन्ध्या को जो शिकारी पोठिया चल्हवा (एक प्रकार की छोटी मछली) लिये घर आता है, उसी के जैसा मुँह बनाकर खड़कू ने कहा—"अच्छा विजय बाबू ही चलें, लेकिन जब उनसे काम नहीं होगा तब तो—"

"हाँ हाँ! उसकी तो कुछ बात ही नहीं है। उस दशा में तो मैं तैयार ही हूँ।" कहकर हंसराज ने मुझे अकेले में बुलाया।

कहा—"सब चीज़ें अच्छी तरह देख-भालकर तजवीज़ करना। और चिट्ठी या काग़ज़-पत्र जो मिले ध्यान से ढूँढ़ना।" इतना ही कहकर वे चले गये।

हंसराज बाबू को बहुतेरे मामलों का पता लगाते मैंने देखा है और साथ रहकर उनकी सहायता भी करता आता हूँ। उनके ढूँढ़-खोज और पता लगाने की रीति को भी मैं इतने दिन साथ रहकर बहुत कुछ सीख-समझ गया हूँ। इसी से मन में आया कि ऐसे साधारण मामले का पता भी मैं नहीं लगा सकूँगा! और खड़कू की अपने ऊपर अश्रद्धा और अवज्ञा-भाव के कारण एक तरह की ज़िद भी आ गई। मन में यही हुआ कि इसका पता लगाये बिना मैं नहीं लौटूँगा।

मन में सोच-विचारकर यही पक्का कर लिया और खड़कू के साथ विक्टोरिया गार्डन से तैयार होकर बाहर निकला। ट्रामबस पर सवार होकर जब मुक़ाम के पास पहुँचा तब सन्ध्या हो चुकी थी। रात की अँधियारी फाड़कर बिजली की रोशनी जगमगा रही थी। ग्रेटरोड के नाके पर पहुँचकर हम लोग उतर पड़े। मोड़ के पास की गली में पचास क़दम चलने पर एक बड़ा मकान दिखाकर खड़कू ने कहा—"यही है वह मकान।"

देखा तो मकान के चारों ओर लोहे की नोकदार रेलिंग है। पुराने ढङ्ग का बड़ा मकान है; मरम्मत और सफ़ाई से मानों पुरानी लाश पर नया कफ़न लपेटा गया है। सामने लोहे के फाटक के स्टूल पर दरबान बैठा है। खड़कू को देखते ही सलाम करके रास्ता

छोड़ खड़ा हो गया। मेरी ओर सन्देह की दृष्टि से देखता हुआ बोला—"सेठजी*, आप भी भीतर जायेंगे ?"

हँसकर खड़कचन्द ने कहा—"चिन्ता नहीं दरबान ! ये हमारे मित्र हैं।"

"बहुत अच्छा" कहकर दरबान हट गया। हम लोग मकान के सामनेवाले सहन में पहुँचे। आँगन पार करने पर बरामदे में जाते ही भीतर से चौबीस-पच्चीस वर्ष का एक युवक बाहर आकर बोला—"अरे ! डाक्टर साहब ! आइए !"

फिर मेरी ओर ताककर पूछा—"और आप सेठ !"

खड़कू ने उनको अलग ले जाकर धीरे से कान में कुछ कहा। तब वे बोले—"अच्छी बात है। आइए ! आइए ! आप भी आइए।"

खड़कू ने मुझे उनका परिचय कराया—"यही मालिक के बड़े लड़के हैं। इनका नाम लालचन्द है।"

अब उनके पीछे-पीछे हम लोग भीतर चले। तीन कमरे पार करने पर एक बन्द द्वार पर हाथ मारा गया। भीतर से कर्कश स्वर में आवाज़ आई—"अरे ! कौन है इस घड़ी लिखने में ख़लल डालने आया !"

लालचन्द ने कहा—"डाक्टर साहब आये हैं बाबूजी ! दरवाज़ा खोलो। शंकूलाल, एक सोलह-सत्तरह वर्ष का लड़का दरवाज़ा खोलकर बाहर आया। वह मालिक का दूसरा लड़का जान पड़ा। हम

---

* बम्बई में सम्मान दिखाने के लिए सबको सेठ कहते हैं।

लोग भीतर गये। लालचन्द ने धीरे से शङ्कू से पूछा—"खा लिया है?" चेहरा उदास करके उसने सिर हिलाकर हाँ कहा।

भीतर कमरे में जाते ही बीच में खाट पर पड़े बिछौने पर नज़र पड़ी। उसी पर तकिया से लगे बैठे दहने हाथ में क़लम लिये दुबले-पतले दुलारेलाल क्रोध भरी दृष्टि से हम लोगों की ओर देख रहे हैं। माथे पर बिजली की रोशनी हो रही है। खाट के पास तिपाई पर एक टेबल लम्प भी रोशन है। इसी से रोगी का सब अवयव अच्छी तरह दिखाई दिया। रोगी पूरे पचास बरस के न होंगे। माथे के बाल सफ़ेद हो गये हैं। मुखमण्डल पर धारदार हड्डियाँ मांसहीन रूप में दिखाई दे रही हैं। दोनों कंधे मानों चमड़ा भेदकर बाहर आने की तैयारी किये हुए हैं। नाक के दोनों नथने चेहरे पर गीध की तरह लटक रहे हैं। आँखें अस्वाभाविक उत्तेजना के मारे अत्यन्त उज्ज्वल हो उठी हैं। लेकिन उत्तेजना के बाद का स्वाभाविक अवसाद आने पर मत्स्यचक्षु की तरह भाव छोड़ देंगे, इसका आभास भी उसमें छिपा झाँक रहा है। नीचे के ओठ भी शिथिल होकर झूल रहे हैं। सारांश यह कि मुँह पर एक कदाकार क्षुधित असन्तोष की रेखा चिह्नित हो रही है।

कुछ देर तक इस प्रेतसम भयङ्कर रूपवाले रोगी की ओर देखा। उसकी बाईं भुजा रह रहकर यों ही हरकत कर रही है, मानों वह देह से स्वाधीन होकर फड़क रही है। जिन्होंने मरे हुए मेढ़क को बिजली के संयोग से चौंकते देखा है, वे इस स्नायुनृत्य का कुछ अनुमान कर सकते हैं।

दुलारेलाल भी बड़ी विकट दृष्टि से मेरी ओर देख रहे थे। उसी टूटती आवाज़ में बोले—"क्यों डाक्टर! यह और किसको साथ लाये हो? क्या चाहता है यह आदमी! हटाओ! हटाओ इसको।"

खड़कू ने इशारे से मुझे कहा कि रोगी के बकने पर ध्यान नहीं देना। अब वे सेज पर पड़े काग़ज़-पत्र हटाकर रोगी की नाड़ी निश्चिन्त भाव से देखने लगे। दुलारेलाल चेहरे पर एक विकट हँसी लाकर एक बार मेरी ओर, एक बार डाक्टर की ओर देखने लगे। बायाँ हाथ वैसा ही हिलता हुआ अपनी नृत्यकला दिखाता रहा। फिर हाथ छोड़कर खड़कचन्द ने कहा—"फिर खा लिया है?"

दु०—हाँ हाँ! खाया है अपना! किसी के बाप का कुछ लेकर तो नहीं खाया!

खड़कू ने दाँतों से ओठ दबाकर कहा—"इससे तो आप अपना ही नुक़सान कर रहे हैं, दूसरे का क्या बिगाड़ते हैं। लेकिन अफ़सोस यह है कि आप उसको समझ नहीं सकते और समझने की शक्ति भी नहीं है। यही विष खा खाकर आप अपना दिमाग़ ख़राब कर रहे हैं।"

दुलारेलाल ने वैसे ही मुँह बिगाड़कर कहा—"हाँ यार, मैं तो दिमाग़ ख़राब कर रहा हूँ। तुम डाक्टरी पास करके आये। मुर्दों की नस-नाड़ी चीर-फाड़कर पंडित बने हो। पकड़ते क्यों नहीं?"

दुलारेलाल की ये टूटती हुई बातें डाक्टर पर पड़ीं। दुलारेलाल फिर बोले—"चारों ओर तो सिपाही का पहरा बैठा दिया है। अब भी नानी मरती है। पकड़ तो नहीं सके?" यही कहकर वे अपनी विकट हँसी से हँसने लगे।

खड़कू नाराज़ होकर उठे। बोले—"आपसे बात करना अन्धे के आगे दीदा खोना है। जो करते हैं कीजिए।"

दुलारेलाल फिर वैसे ही ही-ही हँसते हुए बोले—"दुर हो! दुर हो! अब पकड़ तो नहीं न पाये! पकड़ोगे क्या घंटा!" फिर दुलारे ने दोनों अँगूठे नचाकर डाक्टर को चिढ़ाना शुरू कर दिया।

अपने बेटे के सामने उनकी यह बेहूदगी मुझे असह्य हो उठी। खड़कू का धीरज और सहन-शक्ति भी तड़फड़ाने लगी। मुझे कहने लगे—"लो भाई विजय! देखना हो तो देख-सुन लो। मुझसे तो अब कुछ नहीं बनता।"

अब दुलारेलाल अँगूठा नचाना छोड़कर अपनी अपलक आँखें मेरी ओर करके बोले—"क्यों जी! तुम किस मतलब से यहाँ आये हो?"

मैंने उस रोगी की बातों का कुछ जवाब नहीं दिया, तब वह फिर कहने लगा—"चालाकी करने को शहर में कहीं नहीं मिला है क्या कोई? यह सब फन्द-फ़रेब यहाँ नहीं लगेगा, समझे? चले जाओ यहाँ से दुम दबाकर, नहीं तो अभी सिपाही को बुलावेंगे। सब के सब सेंध के चोर ही आते हैं यहाँ।"

ये बातें अपनी टूटती आवाज़ में दुलारेलाल ने कहकर खड़कू को भी समेट लिया। मैं किस लिए आया सो तो रोगी की समझ में नहीं आया, इसी कारण या मुझपर सन्देह करके इतना बक गया।

लालचन्द ने मेरे कान में कहा—"आप इनकी बातों को एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दीजिए। ये हवास में नहीं हैं।"

मैंने समझ लिया कि ये विष खा खाकर अपना सब खो रहे हैं। बड़ा भयानक, बड़ा विकट, विष खा रहे हैं। ऐसा हलाहल खाकर आप ही जो अपना सरबस खो रहा है, उसकी बुद्धि को क्या कहा जाय !

हंसराज बाबू ने सब अच्छी तरह देखने-सुनने को कहा था, इसी से घर के चारों ओर भी अच्छी तरह ध्यान से देखा। कमरा बहुत बड़ा है ! उसमें कुछ असबाब भी नहीं है। एक पलँग है, तीन-चार कुर्सियाँ हैं। एक आलमारी, एक तिपाई। तिपाई पर लम्प रक्खा है। उसके पास ही कुछ सादे काग़ज़, कुछ लिखने के सामान, सब चारों ओर बिखरे पड़े हैं। मैंने एक लिखा काग़ज़ उठाया। उसको पढ़ते ही मेरा तो कलेजा दहल गया। खड़कचन्द ने जो कुछ कहा था, सब सत्य है। उस काग़ज़ को पढ़ने पर मैंने समझ लिया कि लिखनेवाला कैसी निन्दित मनोवृत्ति का है। जहाँ लाल स्याही से अण्डरलाइन करके लोगों की दृष्टि आकर्षित की गई है वहाँ की बेहूदगी, अश्लीलता और नीच प्रवृत्ति से तो पनाह माँगना पड़ता है।

मैंने सब पढ़कर बड़ी घृणा से दुलारेलाल की ओर देखा तो वे फिर उसी लेख में लगे थे। पारकर का क़लम भी पास ही पड़ा था। लिखने के पीछे अब लाल स्याही का काम पड़ेगा। दावात के पास एक और मटमैली लाल स्याही का पारकर क़लम है।

पारकर क़लम बड़ी तेज़ी से बिना खरोंच दिये चल रहा है। देखा तो शीट ख़तम करके दुलारेलाल लाल क़लम उठाकर उसको दोहराने और जहाँ-तहाँ लाल निशान देने लगे।

मैं मुँह फेरकर और चीज़ें देखने लगा। आलमारी में भी और कुछ नहीं, कई शीशियाँ पड़ी देखीं। उनमें थोड़ी-थोड़ी दवा पड़ी थी। खड़कू से मालूम हुआ कि वह उन्हीं की दी हुई दवाइयाँ हैं। कमरे में दो दरवाज़े, दो जँगले हैं। एक दरवाज़े से होकर हम लोग भीतर गये थे। दूसरे दरवाज़े से नहाने जाने का मार्ग है। उधर जाकर देखा तो वहाँ भी कुछ नहीं है। कई कचारे हुए कपड़े, तौलिया, तेल, साबुन, मंजन आदि रक्खा है। दोनों जँगलों का पता लगाया तो वे सदा बन्द रहते हैं। खुलें भी तो बाहर से उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। हंसराज होते तो किस तरह क्या देखते इसका अनुमान करने की चेष्टा करके भी नहीं कर सका। दीवार पर ठोककर देखूँ या नहीं कि कहीं पोली है या नहीं।

इसी समय एक दीवार में ताक पर चाँदी का अतरदान देखा। उसको आग्रह से जाँचा तो मालूम हुआ, उसमें रूई और दूसरे ख़ानों में थोड़ा अतर है। मैंने धीरे से लालचन्द से पूछा—"क्या अतर भी लगाते हैं?"

उसने कहा—"ऐसा तो नहीं जान पड़ता। अगर लगाते तो सुगन्ध आती ज़रूर।"

मैं—यह अतरदान कब से इस कमरे में रक्खा है?

ला०—वह तो बराबर यहीं रहता है। बाबूजी का ही लाया हुआ है।

मैंने देखा तो दुलारेलाल क़लम रोककर मेरी ही ओर देख रहे हैं। मन में जोश आया, मैंने रूई में अतर लेकर जेब में रख

लिया। फिर चारों ओर अच्छी तरह देखकर कमरे से बाहर आया। देखा तो दुलारेलाल मेरी ही ओर ताक रहे हैं। उनके चेहरे पर वह व्यङ्ग हँसी खेल रही है।

बाहर बरामदे में आकर मैं बैठ गया। कहा—"आप लोगों से मैं कुछ पूछना चाहता हूँ।"

लालचन्द ने कहा—"अच्छी बात है; पूछिए।"

मैं—आप लोग तो कड़ी निगरानी रखते ही हैं। कौन कौन लोग पहरे पर हैं?

ला॰—मैं हूँ, शंकू है, मा हैं। पारी-पारी से पहरा लगता है सबका। हम लोग नौकर-चाकर किसी को पास नहीं आने देते।

मैं—आप लोगों ने कभी उनको वह चीज़ खाते देखा है?

ला॰—नहीं, मुँह में देते तो कभी नहीं देखा, लेकिन मालूम हुआ कि खाये हुए हैं।

मैं—वह चीज़ कैसी है, कभी देखी किसी ने?

ला॰—जब ज़ाहिरा खाते थे, तब तो देखा था। पानी की तरह पतली चीज़ है। होमियेपैथी की शीशी में रहती थी वह चीज़। उसी की कई बूँद शरबत या और किसी चीज़ में मिलाकर खाते थे।

मैं—वैसी शीशी घर में नहीं है, यह निश्चय मालूम है?

ला॰—हाँ, ठीक मालूम है। हम लोगों ने सब कोना-अँतरा राई-रत्ती ढूँढ़ लिया है।

मैं—तब तो ज़रूर बाहर से आता है। लेकिन लाता कौन है?

सिर हिलाकर लालचन्द ने कहा—"यह कहाँ मालूम है!"

मैं— अच्छा, ठीक विचारकर कहिए आप तीनों आदमियों के सिवा क्या और कोई इस घर में कभी नहीं आता ?

"नहीं, कोई नहीं आता। एक डाक्टर साहब को छोड़कर।"

अब तो मेरी जिरह ख़तम हो गई। क्या पूछूँ, यही हथेली पर गाल रक्खे कुछ देर तक सोचता रहा। फिर हंसराज बाबू की रीति याद आई। मैंने पूछा—"अच्छा इनके पास कोई चिट्ठी-पत्री आती है ?"

"नहीं।"

मैं—कोई पार्सल या और कोई चीज़ ?

इस बार लालचन्द ने कहा—"हाँ, हफ़्ते में एक बार एक रजिस्ट्री चिट्ठी आती है।"

मैंने उत्साह में भरकर पूछा—"कहाँ से आती है ? कौन भेजता है ?"

लज्जा से सिर नीचा करके लालचन्द ने कहा—"पूना से मोहिनी नाम की एक स्त्री भेजती है।"

मैं—अच्छी बात है। अच्छा, पार्सल में क्या है, आप लोगों ने कभी देखा भी है ?

"हाँ, देखा है" कहकर लालचन्द ने लड़के की ओर ताका।

मैंने आग्रह से पूछा—"उसमें क्या रहता है ?"

"सादा काग़ज़ रहता है।"

मैं—सादा काग़ज़ ?

"हाँ, लिफ़ाफ़ों में सादे काग़ज़ भरे रहते हैं। और तो कुछ नहीं रहता।"

मैं—और कुछ नहीं।

"नहीं, और कुछ नहीं।"

कुछ देर मैं चुपचाप ताकता रहा। फिर पूछा—"ठीक मालूम है, लिफ़ाफ़े में और कुछ नहीं रहता?"

लालचन्द ने मुसकुराकर कहा—"हाँ, ठीक जानता हूँ। बाबूजी ही रसीद पर सही करके रजिस्ट्री लेते हैं, लेकिन मैं ही उसको खोलता हूँ। उसमें सादे काग़ज़ के सिवा और कुछ नहीं होता।"

मैं—हर बार आप ही खोलते हैं। अच्छा कहाँ खोलते हैं?

"बाबूजी के कमरे में खोलता हूँ। उसी कमरे में डाकवाला वह रजिस्ट्री चिट्ठी दे जाता है।"

मैं—लेकिन यह तो बड़े अचरज की बात है। सादा काग़ज़ रजिस्ट्री करके भेजने का मतलब क्या है?

सिर हिलाकर लालचन्द ने कहा—"मैं नहीं जानता साहब।"

मैंने कुछ देर तक और वहाँ निकम्मा सा बैठकर लम्बी साँस ली। फिर उठा। मन में रजिस्ट्री की बात से आशा हुई थी कि पकड़ लिया है, लेकिन वह आशा छूमन्तर हो गई। देखा तो उधर के दरवाज़े पर ताला लगाया हुआ है। मैंने समझ लिया यह साधारण दृष्टि से देखने में सामान्य सा जान पड़ता है, लेकिन हमारी बुद्धि इसमें नहीं गड़ती। रूई देखने में नरम है, लेकिन धुनने में धुनिया लबेजान हो जाता है। इस विष-जर्जरित-देह, अकालपङ्गु लम्पट को पहचानना मेरी अक़्ल से परे है। यहाँ हंसराज बाबू के शान पर चढ़े हुए दिमाग़ का ही काम है।

उदास मुँह लिये घर से बाहर होने लगा था। मनमें था कि सब बातें उनसे चलकर कह दूँगा। इसी समय एक बात याद आ गई। पूछा—"अच्छा दुलारेलालजी किसी को चिट्ठी-पत्री लिखते हैं?"

लालचन्द ने कहा—"नहीं, चिट्ठी-पत्री तो नहीं लिखते, लेकिन महीने-महीने मनीआर्डर से रुपया भेजा करते हैं।"

मैं—किसको भेजते हैं?

लालचन्द ने शरमाते हुए कहा—"उसी यहूदिन को।"

मैं—यहूदिन कौन?

"वही पूनेवाली स्त्री।"

मैं—वह यहूदिन है!

ला०—हाँ, मोहिनी नाम ठीक नहीं, उसका नाम खानावाला है।

खड़कू ने कहा—"वही स्त्री दुलारेलाल की पहले—"

"अच्छा, मैं समझ गया। कितना रुपया भेजते हैं?"

"एक सौ रुपया। लेकिन किस वास्ते भेजते हैं सो मालूम नहीं है।"

मन में मैंने सोचा कि ये उसको पेंशन की तरह देते हैं। लेकिन मैंने कुछ ज़ाहिरा कहा नहीं। अकेले वहाँ से बिदा हुआ। खड़कचन्द वहीं रह गये।

२

डेरे पर पहुँचते पहुँचते रात के आठ बज गये। हंसराज बाबू अपनी लाइब्रेरी में थे। धक्का देते ही किवाड़ खुल गये। उन्होंने देखते ही पूछा—"क्यों क्या हाल है! समस्यापूर्ति हुई?"

"ना" कहकर मैं भीतर एक कुर्सी पर जा बैठा। हंसराज बाबू एक मोटा लेंसदार गोल काच हाथ में लिये एक काग़ज़ जाँच रहे थे, वह मेग्निफ़ाइङ्ग ग्लास हाथ में लिये हुए ही बोले—"क्या बात हुई बोलो। इतने शौक़ीन कब से हुए! अतर लगाकर आये हो क्या?"

"अतर लगाया नहीं, लाया हूँ" कहकर मैंने आदि से अन्त तक सब कह सुनाया। उन्होंने भी ध्यान से सब सुना। मैंने अन्त में कहा—"मुझसे तो काम नहीं बना भाई! तुम देखो कुछ कर सकते हो तो इस समस्या की पूर्ति करो। देखो इस अतर को तुम एनेलाइज़ करके कुछ पा सकते हो तो हासिल करो......"

"क्या हासिल करें मकड़े का रस!" यही कहकर हंसराज ने मुझसे वह इत्र से तर रूई लेकर घिसना और सूँघना शुरू किया। कहा—"वाह, यह बड़ी तेज़ गन्ध है भाई। बिलकुल असल अम्बरी अतर है!"

अब रूई को फिर उलटी हथेली पर घसते हुए कहने लगे—"हाँ! क्या कहते थे हासिल करने को?"

मैंने कुछ इधर-उधर करके कहा—"हो सकता है कि दुलारेलालजी इसी अतर के बहाने—"

हँसकर हंसराज ने कहा—"एक मील दूर से जिसकी गन्ध पुकार रही है, उसको कोई छिपाकर व्यवहार कर सकता है ? दुलारेलाल अतर लगाते हैं, इसका कुछ प्रमाण मिला है ?"

"सो तो मुझे नहीं मिला। लेकिन—"

"नहीं, नहीं यार ! उधर नहीं। दूसरी ओर ढूँढ़ो। किस तरह चीज़ उस घर में आती है और कैसे सबके सामने मुँह में डालते हैं ? यह सब विचार के देखो। रजिस्ट्री से सादा काग़ज़ किस लिए आता है ? उस स्त्री को रुपया क्यों भेजा जाता है, यह सब विचार किया है ?"

मैंने निराश होकर कहा—"सब मैंने किया है, लेकिन मुझसे तो काम नहीं बना भाई।"

हं०—और सोचो। घबराने से काम नहीं बनता। धीरज धरकर चलने से सफलता मिलती है। ख़ूब गम्भीर होकर विचार करो। ख़ूब एकाग्रचित्त होकर काम में आगे बढ़ो। पीछा नहीं छोड़ेंगे, इसका निश्चय करके दृढ़ होकर आगे बढ़ो।

यही कहकर उन्होंने टेबुल पर जो लेंस रख दिया था फिर उठा लिया। मैंने पूछा—"हम विचार करें और तुम ?"

हं०—मैं भी सोचता हूँ। लेकिन एकाग्र होकर मैं विचार नहीं कर सकता इस मौक़े पर। मेरा वह जालसाज़—

यही कहकर फिर वे अपनी मेज़ पर झुक गये। मैं वहाँ से चलकर अपने आरामगाह में कोच पर लम्बा पड़ गया और पड़े-पड़े

सोचने लगा—"बात तो सच्ची है। यह ऐसा कोई कठिन तो नहीं है कि मैं न कर सकूँ। ज़रूर मैं कर लूँगा। मैं इसको बिना किये छोड़ नहीं सकता। ज़रूर यह समस्या मेरी ही पूर्ति के लिए आई है।"

"पहली बात तो यह कि यह रजिस्ट्री करके सादा काग़ज़ किस मतलब से आता है ? किसी गुप्त अदृश्य स्याही से उस पर कुछ लिखा रहता है। अगर ऐसा ही है तो इसमें दुलारेलाल को क्या सुविधा होती है ? वह चीज़ तो उनके पास पहुँच नहीं सकती। अच्छा मान लिया कि वह चीज़ किसी तरह घर में पहुँच गई। लेकिन उसको दुलारेलाल रखता कहाँ है ? होमियोपैथी की शीशी भी तो छिपाकर रखना सहज नहीं है। आठों पहर कड़ी निगरानी उस पर रहती है। ऊपर से रोज़ खाना-तलाशी हो रही है तब फिर—"

सोचते-सोचते मेरा दिमाग़ गरम हो गया। पाँच पाँच चुरुट मैंने फूँक डाले, लेकिन एक सवाल का जवाब नहीं निकला। निराश हो कमर थामकर बैठने की बेला आई कि इसी समय एक बात सूझ गई। झट कोच पर सँभलकर बैठ गया।

"यह कैसे हो सकता ! फिर हो क्यों नहीं सकता ? यही विचार आया। कवि सुन्दरदास ने कहा है—'है कहूँ तो ना बने, नाहीं कही न जाय ! है नाहीं के बीच में साहब रहा समाय !' यह उक्ति परमात्मा अखिलनायक विश्वम्भर के लिए है।"

फिर मन में आया—'इसके सिवा और हो ही क्या सकता है !"

हंसराज बाबू ने कहा था—"किसी विषय में अगर युक्ति-सङ्गत प्रमाण है तब वह देखने में असम्भव जान पड़ता हो तब भी उसे

सच मानकर चलना उचित है। यहाँ भी वही बात है। इस समस्या का समाधान यही है।"

अब हंसराज बाबू से चलकर कहने के लिए उठता हूँ कि वे आप ही वहाँ आ पहुँचे। मेरी ओर तेज़ नज़र से देखकर बोले—"क्यों ! सोच लिया !"

मैं – जान पड़ता है, ढूँढ़ लिया।

"अच्छी बात है। ख़ूब किया ! क्या निकाला है सुनें तो !"

मुझे कहने में कुछ रुकावट हो रही थी। सङ्कोच ठेल-ठालकर उसे दूर करके मैंने कहा—"मैंने दुलारेलाल के मकान में दीवारों पर और कोने में मकड़ों का जाल फैला देखा है। मुझे विश्वास है कि उन्हीं को पकड़कर उनका रस पीते हुए वे अपनी ख़ुराक पूरी कर रहे हैं।"

"पकड़-पकड़कर उन्हीं को खाते हैं !" कहकर हंसराज बाबू ज़ोर ज़ोर से हँसने लगे। बोले—"वाह विजय बाबू ! ख़ूब किया तुमने। हो तुम बड़े बुद्धिमान् ज़हीन इसमें कुछ सन्देह नहीं। बड़े वीर हो। तुम अपना सानी नहीं रखते। लेकिन याद रक्खो दीवार पर से मकड़ों को पकड़कर खाने से नशा नहीं हो सकता। शरीर भर में उससे विष फूट निकलेगा। नशा नहीं होगा, रक्त भर में विस्फोट होगा।"

मैंने तो ग्लानि में आकर कहा—"तब तुम्हीं बतलाओ क्या बात है।"

अब हंसराज बाबू ने कुर्सी पर बैठकर सामनेवाले टेबुल पर पाँव फैला दिया। एक चुरुट सुलगाते हुए बोले—"सादा काग़ज़ डाक से क्यों आता है, समझ सकते हो ?"

"नहीं।"

हं०—अच्छा, स्त्री को रुपया किस लिए भेजते हैं ? समझ में आया ?

"नहीं।"

हं०—दुलारेलाल रात-दिन अश्लील बातें लिखते हैं, इसका भी कारण नहीं समझा न ?

"नहीं, तुमने समझा है ?"

"जान पड़ता है, मैं समझता हूँ।" कहकर हंसराज बाबू ने सिगरेट में से ज़ोर के साथ धूआँ खींचा। कहा—"लेकिन जब तक किसी विषय को भली भाँति न जान ले, तब तक उस पर राय देना ठीक नहीं होता।"

"किस विषय पर ?"

हं०—पहले जानना चाहिए कि दुलारेलाल की जीभ किस रङ्ग की है।

मैंने समझा कि हंसराज बाबू हमारी भद्द उड़ा रहे हैं। मैंने झनखाकर कहा—"अब लगे दिल्लगी करने।"

इतनी देर तक हंसराज बाबू आँखें बन्द किये हुए बातें कर रहे थे। अब उन्होंने "दिलग्गी ?" कहकर आँखें खोलीं और मेरी ओर देखकर कहा—"अरे तुम नाराज़ हो गये ! मैं सच कहता हूँ, दिल्लगी

की बात नहीं है। दुलारेलाल की जीभ के रङ्ग पर ही सब निर्भर है। अगर उनकी जीभ का रङ्ग लाल है तो समझना होगा कि मेरा अनुमान ठीक है। अगर नहीं...। जान पड़ता है जीभ की ओर तुमने ध्यान नहीं दिया है।"

अब मुझे क्रोध आया। मैंने कहा—"नहीं, जीभ की ओर ध्यान मेरा नहीं गया।"

हँसकर हंसराज बाबू ने कहा—"और पहले ही इस पर ध्यान देना चाहिए। अच्छा जो हो गया वह हो गया। अब फोन करके दुलारेलाल के लड़के से यह बात पूछो।"

मैं—वह ऐसा तो नहीं समझेगा कि मैं हँसी करता हूँ।

हंसराज बाबू हाथ हिलाकर कहने लगे—"अरे नहीं, नहीं! तुम डरो मत, डरने की कोई बात नहीं है।"

बग़लवाले कमरे में नम्बर ढूँढ़कर कनेक्ट कराया और पूछा। मालूम हुआ अभी खड़कचन्द वहीं हैं। उन्हीं ने जवाब दिया—"उसको कहने की ज़रूरत नहीं, समझकर ही नहीं कहा था। दुलारेलाल की जीभ ख़ूब लाल है। यह मुझे अस्वाभाविक जान पड़ता है; क्योंकि वे बहुत पान भी नहीं खाते। बात क्या है?"

अब मैंने फोन पर हंसराज बाबू को बुला दिया। उन्होंने कहा—"लाल है न! तब तो हो गया, सब मामला ख़तम है।"

हमारे हाथ से रिसीवर लेकर कहने लगे—"डाक्टर! ओ डाक्टर! आपकी समस्या की तो पूर्ति हो गई। हाँ, विजय बाबू ने ही पता

लगाया है। मैंने ज़रा मदद भर दी है। मैं अपने जालसाज़ के पीछे हैरान था। हाँ, जालसाज़ को पकड़ लिया है। आपको और कुछ ज़्यादा करना नहीं है। आप दुलारेलाल के कमरे से लाल स्याही की दावात, और लाल रङ्ग की फ़ौंटेन पेन हटा दीजिए। हाँ, ठीक पकड़ा है। कल एक बार आइए तो सब बातें होंगी। नमस्कार! नमस्कार! विजय बाबू को आपका धन्यवाद कहेंगे न! मैं कहता था न कि उनकी बुद्धि आजकल बड़ी पैनी हो गई है।" यही कहते हुए हँसकर हंसराज बाबू ने फोन रख दिया।

अब बैठक में आकर लज्जित होते हुए मैंने कहा—"कुछ-कुछ तो मैं समझ रहा हूँ, लेकिन सब साफ़ समझाओ कैसे समझा है तुमने?"

एक बार घड़ी की ओर देखकर हंसराज ने कहा—"अब भोजन का समय हो गया, रसोइया अभी पुकारेगा। अच्छा चटपट कहे देता हूँ। सुन लो—पहले ही तुमसे भूल हुई, देखना यह चाहिए कि वह चीज़ घर में आती कैसे है! खुद तो रोगी चलनसार नहीं है, उसके हाथ-पावँ यह काम कर ही नहीं सकते। इसलिए कोई वहाँ लानेवाला है ज़रूर। वह आदमी है कौन? घर में पाँच ही आदमी तो जाते हैं। डाक्टर, दोनों लड़के, लड़कों की मा और एक आदमी और। पहले चार तो ऐसे हैं जो विष नहीं खाने देंगे यह बात निश्चित है। अतएव इस पाँचवें का ही काम है।"

मैं—पाँचवाँ है कौन?

हं०—पाँचवाँ है वही डाक-पियन। वह हफ़्ते में एक बार इसी काम के लिए दुलारेलाल के घर में घुसता है। बस, उसी के द्वारा चीज़ भीतर जाती है

मैं—लेकिन लिफ़ाफ़े में तो सादे काग़ज़ के सिवा और कुछ नहीं होता।

हं०—यहीं तो धोखा होता है। सब लोग यही समझते हैं कि लिफ़ाफ़े में ही माल है। इसी कारण उस पोस्टमैन को कोई नहीं लक्ष्य करता। वह है होशियार, बस लाल रोशनाई की दावात बदल-कर चला जाता है। रजिस्ट्री से सादा काग़ज़ लाने का मतलब यही है कि उसी वसीले से वह दुलारेलाल के घर में घुसने पाता है।

मैं—तब?

हं०—उसके बाद तुमने एक और भूल की थी। यहूदी स्त्री को रुपया पेंशन के तौर पर नहीं भेजा जाता। यह रीति कहीं नहीं चलती। वह रुपया उस दवा का दाम है और वही लौंडिया पोस्टमैन की मारफ़त दवा भेजा करती है।

मैं—तब तो ख़ूब है भाई! दवा दुलारेलाल के हाथ में पहुँच गई और उसका पता किसी को मिला ही नहीं। लेकिन आठों पहर आदमी तैनात हैं, तब खाते कैसे हैं!

हं०—दुलारेलाल ने कहानी लिखना शुरू किया। सदा लिखने का सामान उनके हाथ के पास तैयार है। इसलिए उठकर खाने को जाने की ज़रूरत नहीं रही। खाट पर बैठे बैठे ही वह काम पूरा कर लेया जाता है। वे काले क़लम से कहानी लिखते हैं। लाल क़लम से दुहराते, सुधारते हैं। बस, घात मिली और क़लम का निब चूस लेया। रोशनाई ख़तम हुई, फिर उसे भर लिया। अब जीभ का लाल रंग क्यों है, सो समझ ही गये हो!

मैं—लेकिन लाल ही क्यों ? काली से भी तो हो सकता था।

हं०—अरे तुमने इतना नहीं समझा ! काली स्याही तो बहुत ख़र्च होती है न ! दुलारेलाल उसको उतना क्यों ख़र्च होने देंगे। इसी वास्ते लाल रोशनाई की व्यवस्था की गई है।

मैं—अरे बाप रे ! समझ गया ! समझ गया। ऐसी सहज बात है।

"हाँ, सहज तो है; लेकिन जिस दिमाग़ से यह सहज बात निकली है, वह तो अवहेलना की वस्तु नहीं है। इतना सहज होने से ही तो तुम लोग पकड़ नहीं पाते थे।"

हंसराज से अब मैंने पूछा—"तुमने कैसे पकड़ा, सो तो कहो।"

"यह तो सहज ही पकड़ गया। इसमें दो चीज़ें बिलकुल निरर्थक जान पड़ीं। एक रजिस्ट्री से सादे काग़ज़ का आना। दूसरे दुलारेलाल का कहानी लिखना। इन दोनों का कारण खोजने में ही असल बात मिल गई।"

इसी समय बग़ल के कमरे में घंटी बजने लगी। हम दोनों वहाँ झट पहुँचे। हंसराज ने पूछा—"कौन है ?" "कौन डाक्टर ! क्या हाल है ! दुलारेलाल चिल्लाते हैं, हाथ-पाँव फेंकते हैं। इससे कुछ नहीं। ऐं ! विजय बाबू को गालियाँ देते हैं। बड़ा अन्याय करते हैं, लेकिन जब उनका मुँह कोई रोक नहीं सकता, तब उपाय क्या है ? जाने दो, विजय बाबू इसकी परवा भी नहीं करते। प्रशंसा के लिए संकट उठाना ही होगा। मधु के साथ मक्खी का डंक, कमल के साथ काँटा, दीपक के साथ कालिख। यह जगत् का नियम है। अच्छा नमस्कार !"

आगामी २०० पुस्तकें

नीचे लिखी २०० पुस्तकें शीघ्र ही छप रही हैं। ये हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों-द्वारा लिखाई गई हैं। आप भी इनमें से अपनी रुचि की पुस्तकें अभी से चुन रखिए और अपने चुनाव से हमें सूचित भी करने की कृपा कीजिए।

विचार-धारा

मानव-संबंधी

(१) जीवन का आनन्द
(२) ज्ञान और कर्म
(३) मेरे अन्त समय के विचार
(४) मनुष्य के अधिकार
(५) प्राच्य और पाश्चात्य समस्या
(६) मानव-धर्म
(७) जातियों का विकास
(८) विश्व-प्रहेलिका

समाज-संबंधी

(१) संस्कृति और सभ्यता का विकास
(२) विवाह-प्रथा, प्राचीन और आधुनिक
(३) सामाजिक आन्दोलन
(४) धर्म का इतिहास
(५) नारी
(६) दरिद्र का क्रन्दन

राजनीति-संबंधी

(१) समाजवाद
(२) चीन का स्वातन्त्र्य-प्रयत्न
(३) राष्ट्रों का संघर्ष
(४) स्वाधीनता और आधुनिक युग
(५) युवक का स्वप्न
(६) योरपीय महायुद्ध
(७) मूल्य, दर और लाभ

विश्व-उपन्यास

(१) तावीज
(२) आना केरेनिना
(३) मिलिनोना
(४) डा० जेकिल और मि० हाइड
(५) पंपियायी के अन्तिम दिन
(६) अमर नगरी
(७) काला फूल
(८) चार सवार
(९) रेवेका
(१०) डेविड कूपर फ़ील्ड
(११) जेन्डा का क़ैदी
(१२) वेनहूर
(१३) कोवेडिस
(१४) रोमियो-जूलियट
(१५) दो नगरों की कहानी
(१६) टेस
(१७) रहस्यमयी

आधुनिक उपन्यास

(१) चुनारगढ़
(२) विषादिनी

(३) कालरात्रि
(४) मुक्ति
(५) यादगार
(६) द्वादशिकी
(७) दाना-पानी
(८) विप्लव
(९) जलती निशानी
(१०) ग्रहचक्र
(११) कजरी
(१२) जयमाला
(१३) उत्कंठिता
(१४) लहर
(१५) विचित्रा (नाटक)
(१६) जयंती
(१७) आलमगीर
(१८) कर्णार्जुन

रहस्य-रोमांच

(१) ताज का रहस्य
(२) शैतान
(३) धन का मोह
(४) कोशलगढ़ का किसान
(५) पहाड़ी फूल
(६) अन्तिम परिणाम
(७) अद्भुत जाल
(८) मृत्यु का व्यापारी
(९) यौवनशिखा
(१०) विद्रोही
(११) छिपा खजाना
(१२) गर्विता
(१३) चेतावनी
(१४) देश के लिए
(१५) दोस्त
(१६) चाँदी की कुंजी
(१७) आदर्श युवक
(१८) हुल्लड़
(१९) शैतान डाक्टर
(२०) प्रतिशोध
(२१) अन्याय का अन्त
(२२) प्रोफ़ेसर चौधरी
(२३) वज्राघात
(२४) समय का फेर
(२५) डाक्टर कोठारी का लोभ
(२६) चीन का जादू
(२७) नीला चश्मा
(२८) हार
(२९) अफ़रीदी डाकू
(३०) खतरे की राह
(३१) जाला मकड़ी का
(३२) अदृश्य आदमी
(३३) साहस का पहाड़
(३४) अंधेरखाता
(३५) कंकन का चोर
(३६) अपूर्व सुन्दरी
(३७) लौह लेखनी
(३८) गुप-चुप
(३९) लाल लिफ़ाफ़ा
(४०) कल की डाक

कहानी-संग्रह

('क' विभाग)—विदेशी भाषाओं की चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('ख' विभाग)—लेखकों की अपनी चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('ग' विभाग)—विभिन्न विषयों पर चुनी हुई कहानियाँ—५ भाग

('घ' विभाग)—भारतीय भाषाओं की चुनी हुई कहानियाँ—६ भाग

विज्ञान

(१) स्वास्थ्य और रोग
(२) जानवरों की दुनिया
(३) आकाश की कथा
(४) समुद्र की कथा
(५) खाद-विज्ञान
(६) मनुष्य की उत्पत्ति
(७) प्राकृतिक चिकित्सा
(८) विज्ञान का व्यावहारिक रूप
(९) प्रकृति की विचित्रतायें
(१०) वायु पर विजय
(११) विज्ञान के चमत्कार
(१२) विचित्र जगत्
(१३) आधुनिक आविष्कार

हिन्दी-साहित्य

अमर साहित्य

(१) वैष्णवपदावली
(२) मीरा के पद
(३) नीति-संग्रह
(४) हिन्दी की सूफी कविता
(५) प्रेममार्गी रसखान और घनानन्द
(६) सन्तों की वाणी
(७) सूरदास
(८) तुलसीदास
(९) कबीरदास
(१०) बिहारी
(११) पद्माकर
(१२) श्री भारतेन्दु

साहित्य-विवेचन-निबंध-संग्रह, इत्यादि

(१) हिन्दी-साहित्य में नूतन प्रवृत्तियाँ
(२) हिन्दी-कविता में नारी
(३) हिन्दी के उपन्यास
(४) हिन्दी में हास्य-रस
(५) हिन्दी के पत्र और पत्रकार ?
(६) हिन्दी का वीर-काव्य
(७) नवीन कविता, किधर
(८) ब्रजभाषा की देन
(९) हिन्दी के निर्माता (द्वितीय भाग)
(१०) बालकृष्ण भट्ट
(११) बालमुकुन्द गुप्त
(१२) महावीरप्रसाद द्विवेदी
(१३) बाबू श्यामसुन्दरदास

धर्म

(१) गीता (शङ्करभाष्य)
(२) ,, (रामानुजभाष्य)
(३) ,, (मधुसूदनी टीका)
(४) ,, (शङ्करानन्दी टीका)
(५) ,, (केशव काश्मीरी की टीका)
(६) योगवाशिष्ठ (११ मुख्य आख्यान)

(७) सरल उपनिषद् (ईश, केन, कठ, मुंडक, प्रश्न, ऐतरेय, तैतिरीय, श्वेताश्वतर आदि) २ भाग
(८) पुराण (समस्त पुराणों के चुने हुए शिक्षाप्रद और मनोमोहक कथानक)
(९) महाभारत के निम्नाङ्कित अंश
क–(विदुरनीति)
ख–(सनक सुजातीय)
ग–(नारायणीय उपाख्यान)
घ–(श्रीकृष्ण के समस्त व्याख्यान)
ङ–(वन, शान्ति और अनुशासन-पर्व के आख्यान)
(१०) पातञ्जल योगदर्शन (व्यास भाष्य)
(११) तंत्र सर्वस्व
(१२) पौराणिक संतों के चरित्र
(१३) उत्तर-भारत के मध्यकालीन संत
(१४) दक्षिण-भारत के संत
(१५) आधुनिक संतों की जीवनी (श्री अरविन्द, रमण महर्षि, विवेकानन्द, उड़िया बाबा आदि
(१६) पतिव्रताओं और सतियों के चरित्र

ऐतिहासिक विचित्र कथा

(१) भारत का प्राचीन गौरव
(२) प्राचीन मिस्र का रहस्य
(३) प्राचीन ग्रीक की सभ्यता
(४) मृत्युलोक की झांकी
(५) अमेरिका का स्वाधीनता-युद्ध
(६) फ़्रांस की राजक्रांति
(७) रोमनसाम्राज्य का पतन
(८) क्रांति की विभीषिका
(९) रोम के महापुरुष
(१०) इत्सिंग का भारत-भ्रमण
(११) ध्रुव प्रदेश की खोज में
(१२) प्राचीन तिब्बत
(१३) सहारा की विचित्र बातें
(१४) मरहठों का उदय और अस्त
(१५) सिक्खों का उत्थान और पतन
(१६) भारत के पूर्वी उपनिवेश
(१७) मुग़लसाम्राज्य में भ्रमण
(१८) मुग़लों का दरबार
(१९) लखनऊ की शाहजादियाँ
(२०) विदेशी यात्रियों का भारत-वर्णन
(२१) नरभक्षकों के देश में—
(२२) पशुओं, मानवों और देवों में—

जीवन-चरित्र

(१) नेपोलियन बोनापार्ट
(२) लेनिन
(३) भारतीय राजनीति के स्तम्भ (१)
(४) तुर्कों का पिता कमाल
(५) मेजिनी—इटली का वीर
(६) सन-यात-सेन—चीन का नायक
(७) एब्राहिम लिंकन—अमेरिका का नेता